नीति-अनीति की कुछ भी पर्वाह नहीं रही। समाज की ऐसी अवस्था देख कर सहृदयी का हृदय हिल उठता है। हाय ! हाय !! पुकारने लगता है। हमारे इस अधःपतन को पुनःउद्धार करने वाला कोई नज़र नहीं पड़ता। फिर भी जो इस समय उद्धारक रूप में हमारे बीच में हैं, उन्हीं की शिक्षा को ग्रहण करना हमारा कर्तव्य हो गया है।

समाज रूपी गाड़ी पुरुष और स्त्री दो पहियों के बल पर स्थित है। समय के फेर से कहिए या स्त्रियों के भोलेपन के कारण पुरुषवर्ग ने अपना प्रभाव ऐसा जमाया कि स्त्रीवर्ग एक दम बिलकुल ही अपंग बना दिया गया। यहाँ तक कि स्त्रियाँ केवल पुरुषवर्ग के भोग-विलास की सामग्री बना दी गईं। उन्हें अपनी शरीर का ज्ञान तक जाता रहा। वे पुरुषों की गुलाम बनकर रहने में ही अपने को अहोभाग्य गिनने लगीं। कहाँ तक गिनाया जाय। पुरुष बलात्कारपूर्वक उनके ऊपर अत्याचार करे, मारे-पीटे, व्यभिचार करे, पर उन्हें उनसे बचने का कोई प्रतिकार समाज ने नहीं छोड़ा। जिस समाज की आज ऐसी दशा हो पूछिए तो सही, फिर उसका कैसे उत्थान हो सकता है।

जिस समाज में पुरुषवर्ग को एक पत्नी रहते अनेक शादी करने का अधिकार प्राप्त है। उसी समाज में स्त्री को सप्तपदी में भाँवर पड़ते ही यदि खुदा न खास्ता वैधव्य हो गया, तो सिवा ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने के कोई दूसरा चारा दिखाई नहीं देता। छिपकर पाप भले ही किया जाय, यह क्षम्य है। पर प्रकट रूप से वही उनकी बर्बादी का कारण बन जाता है। आज हमारी अनेक बहिन-बेटी और बहुएँ—इसी कारण दर-दर मारी-मारी फिरती हैं, पापपूर्ण और घृणित वृत्ति से जीवन निर्वाह करती हैं।

समाज में स्त्रियों के क्या अधिकार हैं, इसपर यदि प्राचीन ऋषि-मुनि तथा सनातन हिंदू धर्माचार्यों के मतानुसार ख्याल न किया जायगा, तो

धीरे-धीरे हिंदू समाज घटता जायगा और एक दिन वह नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। स्त्रियाँ हमारी माताएँ हैं, वे ही भावी समाज की जननी हैं। ऐसी अवस्था में जैसे कलुषित विचार उनके समाज के प्रति बनते जायेंगे, भावी संतान पर भी उनका प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। अतएव पुरुषों को इसका अभी से प्रतिकार करना चाहिए।

आज हिंदू के अलावा जो अन्य धर्मावलंबी भारत में वृद्धि पा रहे हैं, उसका कारण यदि आप ध्यानपूर्वक विचार करेंगे तो आपको विदित हुए बिना न रहेगा कि इसका मुख्य कारण हमारी स्त्रियों के प्रति की जाने वाली केवल कुचालें मात्र हैं। यदि हम शीघ्र इस पर रूढ़ि का ख्याल छोड़ देंगे और वैदिक व्यवस्था की तरह उनके प्रति व्यवहार करेंगे तो अवश्य ही उनकी आत्मा हमारे प्रति आदर की दृष्टि से व्यवहार करेगी।

आज हम आपकी सेवा में एक ऐसी ही पुस्तक भेंट कर रहे हैं, जिससे आप स्त्रियों के प्रति आदर करना सीखेंगे। इसपर विशेष कुछ लिखना व्यर्थ है। अंत में पाठक और पाठिकाओं से हमारी सादर प्रार्थना है कि वे इस पुस्तक के प्रचार में हमें काफी सहायता देने की कृपा करें।

भवदीय
प्रकाशक

स्त्रियों का स्थान

एक बहन, जो अब तक स्वेच्छा से कुमारी रही हैं, लिखती हैं—

"कल मलाबार भवन में स्त्रियों की एक सभा हुई थी, जिसमें अनेक भाषण दिये गए और प्रस्ताव भी पास हुए थे। विचारणीय विषय 'शारदा बिल' था। लड़कियों को ब्याहने के सम्बन्ध में कम-से-कम अठारह वर्ष उम्र के आप पक्षपाती हैं, यह जान कर हमें प्रसन्नता हुई है। इस सभा में एक और दूसरा महत्व का प्रस्ताव विरासत सम्बन्धी क़ानून का था। इस विषय पर आप 'यंग इण्डिया' अथवा 'नव जीवन' में एक बड़ा लेख लिखें तो वह हमारे लिए अनेक रूप में सहायक होगा।

मुझे तो यह समझ ही नहीं पड़ता कि अपने जन्म-सिद्ध अधिकार वापिस पाने के लिए हमें भीख क्यों माँगनी पड़े? पुरुषों का अपनी जननी को 'अबला' कहना और स्त्रियों के छिने हुए अधिकार उन्हें वापिस देते समय उदारता का स्वाँग करते हुए बड़ी-बड़ी बातें बघारना, कितना विचित्र, दुःसह और

हास्य-जनक है! जिन अधिकारों को पुरुषों ने अन्याय-पूर्वक, एक मात्र अपने पशु-बल द्वारा स्त्रियों से छीना है, उन्हें वापिस लौटाने में कौन उदारता और बहादुरी है? स्त्री पुरुष से किस बात में घट कर है, कि जिसके कारण विरासत में उसका हिस्सा पुरुष से कम हो? वह बराबर क्यों न होना चाहिए।

दो-एक दिन पहले हम उस विषय पर खूब जोरों से विचार कर रही थीं। एक बहन ने कहा–हम क़ानून में परिवर्तन नहीं चाहतीं, हम अपनी वर्तमान दशा में संतुष्ट हैं। लड़का कुटुम्ब के परम्परागत रीति-रस्मों और उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करता है, कुटुम्ब का आधार भी वही होता है। अतएव न्यायतः विरासत का अधिकांश उसी को मिलना चाहिए। इसी समय पास ही खड़ा हुआ एक नवयुवक बोल उठा—'लड़की की चिन्ता आप क्यों करती हैं, उसका पति उसकी रक्षा कर लेगा। बस जहाँ-तहाँ यही एक पुकार है—"पति, पति" यह 'पति' तो एक महान विपत्ति हो पड़ा है। पता नहीं स्त्रियों के लिये क्यों, यह अनिवार्य अंग समझा जाता है? और कन्या के सम्बन्ध में तो लोग इस ढंग से बातें करते हैं, मानों वह धन की कोई पोटली हो। माँ-बाप तभी तक उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं, जब तक उसका वह 'पति' आकर उसे अपने अधिकार में नहीं ले लेता। उसके बाद तो मानों माँ-बाप लड़की की रक्षा के भार से अपने को मुक्त समझ बैठते हैं। सचमुच ही अगर आप

लड़की के रूप में पैदा हुए होते तो यह सब देखकर आपका खून खौल उठता।"

पुरुष स्त्री-जाति पर जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें देख कर खून खौलने के लिए मुझे लड़की के रूप में पैदा होने की आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार में, विरासत सम्बन्धी कानून इन अत्याचारों की दृष्टि से नगण्य है। शारदा बिल जिस गंदगी को दूर करने का प्रयत्न करता है, वह गन्दगी विरासत सम्बन्धी अत्याचारों से कहीं अधिक भयंकर और गंभीर है, लेकिन स्त्रियों के बारे में, मैं जरा भी झुकने को तैयार नहीं हूँ। मतानुसार कानून को स्त्री और पुरुष के बीच किसी भी प्रकार की असमानता नहीं रखनी चाहिए। लड़के और लड़की के बीच किसी तरह का भेद-भाव न होना चाहिए। जैसे-जैसे स्त्री-जाति को शिक्षा द्वारा अपनी शक्ति का भान होता जायगा, वैसे-वैसे उसके साथ आज जो असमान व्यवहार किया जाता है उसका अधिकाधिक उग्र विरोध होगा। लेकिन पक्षपात से भरे कानूनों के सुधार से इस स्थिति में बहुत थोड़ा परिवर्तन हो सकता है। जैसा कि लोग समझते हैं, उससे कहीं गहरी जड़ इस व्याधि की है। पुरुष का सत्ता और कीर्ति के लिए लोलुप होना इसका मूल कारण है, और इससे भी बढ़ कर कारण स्त्री-पुरुष की परस्पर विषय-वासना है। दूसरे पुरुष मरने के बाद अपनी मानी हुई अमरता की भी अपेक्षा रखता है, अतएव अगर सब सन्तानों में समान रूप से सम्पत्ति का बटवारा किया जाय तो वह टुकड़े-टुकड़े हो जाय और इस

कारण पुरुष का नाम अमर न रह सके, इसी भय से बड़े लड़के को सारी सम्पत्ति नहीं, तो उसका बड़ा भाग विरासत में अवश्य मिलना चाहिये, इस आशय का क़ानून बना है।

यहाँ यह भूलना न चाहिए कि ज्यादहतर स्त्रियाँ विवाहिता होती हैं और क़ानून के उनके विरुद्ध होते हुए भी वे अपने पतियों की सत्ता और अधिकार में पूर्ण तरह हाथ बँटाती है, तथा अपने को अपने श्रीमान् पतियों की श्रीमती अमुक कहलाने में आनन्द और गर्व का अनुभव करती हैं। अतएव सैद्धान्तिक चर्चा के समय पक्षपात-भरे क़ानूनों के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के लिए भले ही वे अपना मत दें, लेकिन जब तदनुसार आचरण का अवसर आता है तब वे अपनी सत्ता और अपने अधिकार को छोड़ना नहीं चाहतीं।

इस कारण यद्यपि मैं इस बात का हमेशा से समर्थक रहा हूँ कि स्त्री-जाति पर से कानून के सारे बन्धन हटा लिए जाने चाहिए, तथापि जब तक भारत की पढ़ी-लिखी-सुशिक्षिता बहिनें व्याधि के मूल कारण को मिटाने के लिए प्रयत्न नहीं करतीं तब तक चार मुश्किल है। मैं उनसे नम्रता-पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि वे इसके लिए प्रयत्न करें। मेरे मत से तो, स्त्री त्याग और तपश्चर्या की साक्षात् मूर्ति है। सार्वजनिक जीवन में उसके प्रवेश से दो फल लगने चाहिये; एक वायु-मण्डल की पवित्रता और दूसरा, पुरुष के सम्पत्ति-संग्रह के लोभ पर अंकुश का रहना। उन्हें जानना चाहिए कि लाखों के पास तो विरासत में छोड़े जाने योग्य कोई

सम्पत्ति ही नहीं होती। इन मानों श्रीमन्त वर्ग की स्त्रियों को यह सीखना चाहिए कि सम्पत्ति की विरासत स्वेच्छा से छोड़ने और अपने उदाहरण द्वारा दूसरों से छुड़ाने में ही उनका श्रेय है। माता-पिता अपनी संतान को स्वावलम्बी बनावें, जिससे खुद मेहनत करके वे पवित्र जीवन बिता सकें। बड़े वारिस को अपने से छोटे भाई-बहनों के पालन-पोषण का भार स्वयं उठा लेना चाहिए। अगर धनिक वर्ग के लोग अपने बच्चों को स्वावलम्बन की शिक्षा देने लग जाँय और उन्हें सम्पत्ति की विरासत के गुलाम बनाने वाले मिथ्या मोह से बचा लें, जिसके कारण वे व्यसनी, उत्साहहीन और निर्वीर्य जीवन बिताने में प्रवृत्त होते हैं, तो जो निस्तेजता और बुद्धिहीनता आज उनकी सन्तान में पाई जाती है, वह बहुत-कुछ दूर हो जाय। युगों से चली आई हुई इस पुरानी गन्दगी को नष्ट-भ्रष्ट करना सुशिक्षिता स्त्रियों का ही धर्म है।

पारस्परिक विषय-वासना ने स्त्री-जाति की पराधीनता को जिस हद तक पहुँचाया है, उसके लिए प्रमाण की आवश्यकता न होनी चाहिए। स्त्री ने कई सूक्ष्म तरीकों से अपनी आकर्षण शक्ति का उपयोग पुरुष से अप्रत्यक्ष रूप से उसकी सत्ता छीन लेने के लिए किया है। पुरुष उसके इस प्रयत्न को निष्फल करने की सदा कोशिश करता रहा है, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। ...अनुचित न होगा कि दोनों के दोनों गड्ढे ...ति को सुलझाने का प्रयत्न

भारतवर्ष की सुशिक्षिता बहनों को करना चाहिए। पाश्चात्य रीति-रस्मों की नक़ल करने से, जो हमारी परिस्थिति के प्रतिकूल हैं, हम इस समस्या को हल नहीं कर सकेंगे। हमें भारत की परिस्थिति और अपने राष्ट्रीय स्वभाव के अनुकूल उपायों की योजना करनी चाहिए। बहनों का कर्त्तव्य है कि वे वातावरण शुद्ध रखें, अपने निश्चयों को दृढ़ और अटल बनावें, दिङ्मूढ़ता के दोष से बचें, अपनी सभ्यता और संस्कृति के सर्वोत्तम तत्व का पोषण करें और उसके दोषों को दूर करें। यह काम सीता, द्रौपदी, सावित्री, दमयन्ती आदि के समान प्रातः स्मरणीय सतियों के जन्म धारण करने से ही हो सकता है; धांधलेबाज़ी से या अधिकाधिक आकर्षक बनने से कदापि नहीं हो सकता।

स्त्रियों की दुर्दशा

एक काठियावाड़ी भाई ने, जिन्होंने अपना नाम व पता भी लिख भेजा है, अपने पत्र में दो स्त्रियों का वर्णन लिखा है। उनके पत्र को संक्षेप में नीचे देता हूँ—

"धनवानों की पत्नियाँ अपनी विरासत के हक़ छोड़ दें, इस आशय का आपका लेख पढ़ कर नीचे लिखे दो किस्से भेजने की इच्छा हुई है—

१—""""के रहने वाले श्री """की पहली स्त्री को, जो सिर्फ़ खूबसूरत न होने के कारण त्याग दी गई हैं, अब तक उनके पति की ओर से भरण-पोषण की कोई सुविधा प्राप्त नहीं हुई है। श्री""""ने दूसरा विवाह किया था, लेकिन दूसरे ब्याह की पत्नी का देहांत हो जाने से अब उन्होंने तीसरा ब्याह किया है।

यह पति नाम-धारी उच्च ब्राह्मण जाति के हैं, तथा—एक उच्च कुटुम्ब में जन्मे हैं। उन्होंने बी० ए० तक की शिक्षा पाई है। आज कल वह बम्बई सरकार के पोलिटिकल आफ़िस में २००) मासिक पर नौकर हैं। इसके सिवाय उन्हें अपने पिता की ओर से अच्छी सी जायदाद विरासत में मिली है।

सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में उनका अच्छा प्रभुत्व है। उन्होंने""""में सोने के शिखर वाला स्वामी-नारायण का एक मन्दिर बनवाया है, इससे सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि उनकी आर्थिक-स्थिति अच्छी है। इतना होने पर भी इन बहन की उचित सहायता का कोई प्रबन्ध अब तक हमारे समाज ने नहीं किया है। फल-स्वरूप पहले किस्से वाली बहन की तरह इन बहन की और इनके बच्चों की हालत भी दर्दनाक है।

क्या हिन्दुओं की विरासत के हक से सम्बन्ध रखने वाले कानून ऐसी निरंकुश पत्नियों (और उनकी सन्तानों) को इनके पति या ससुर से उनकी स्थिति के अनुरूप जीविका और विरासत का हक माँगने का अधिकार देते हैं ? ऐसे अधिकारों के मिलते हुए भी अगर वे गुजारे के लिए कुछ न माँगे तो पेट कैसे पालें ? अगर ऐसी दुरदुराई हुई बहनों से हम जीविका के लिए प्रार्थना करने का मोह छुड़ाने की कोशिश करें तो क्या उनकी और हमारी (सुधारकों की) इस निष्क्रियता से कुलाभिमानी पुरुषों का स्वेच्छाचार और अधिक न बढ़ेगा ? इसके कारण स्त्रियों के कुमार्ग-गामी होने, बुरे प्रलोभनों में फँसने का क्या डर नहीं है ? इन बहनों के अपने अधिकारों का मोह छोड़ देने से निर्दय पतियों और ससुरों का क्या हौसला नहीं बढ़ेगा ?"

ये बातें इतनी विस्तार के साथ कही गई हैं कि इनमें अतिशयोक्ति का डर नहीं रहता। इस तरह की दर्दनाक हालत में फँसी हुई बहनें क्या करें, यह अवश्य ही एक महत्व का प्रश्न

इन बहन के नाम-धारी 'पति देव' जब आज से १० साल पहले दूसरा ब्याह करने को तैयार हुए, तब इनके सगे-सम्बन्धियों ने हमारे ब्राह्मण समाज की और......राज्य की सहायता चाही। लेकिन 'पति देव' ठहरे धनवान, उन्होंने जाति के ब्रह्म-भोज में ३,०००) देने की बात कह कर विरोध का मुँह बन्द कर दिया। राज्य को भी उनसे काम पड़ता है, इस लिए राज्य ने भी श्री...... के काम में दखल देने का साहस नहीं किया। उलटे विरोधियों का दमन करके राज्य ने उनका मार्ग और भी सरल बना दिया। अब तीसरा ब्याह करके अपनी पहली पत्नी को तिल-तिल कर के मार डालना ही श्री......ने उचित समझा है।

स्त्री की दर्दनाक हालत

एक नौजवान के पत्र का सार इस तरह है –

"पन्द्रह वर्ष के एक बालक का ब्याह सत्रह वर्ष की एक युवती के साथ हुआ है। युवती अपने नासमझ पति से नाराज़ है, पति के बड़ा होने पर इच्छानुसार दूसरा ब्याह कर सकता है। लेकिन युवती क्या करे? माता-पिता और समाज की दृष्टि से तो उसकी कोई इच्छा हो ही नहीं सकती। दूसरे वह युवती अशिक्षिता है, इस वजह से वह पुनर्विवाह का विचार भी नहीं कर सकती, अगर वह कुछ करना चाहती है तो सिर्फ अनीति, ऐसी युवती क्या करे? उसका रक्षक कौन हो?"

हिन्दू-संसार में ऐसी करुण-कथाओं के अगणित उदाहरण मिल सकते हैं। यह सम्भव नहीं कि उनका प्रतिकार शीघ्र ही किया जा सके। कई बातें ऐसी हैं जिन्हें इस समय सिवाय सह लेने के दूसरा चारा नहीं है। ऐसे मामलों में जो कुछ मुझे सूझता है वह मैं प्रकट करता हूँ। अगर कोई रिश्तेदार ऐसी युवती की मदद करनी चाहे तो उसे दृढ़तापूर्वक उसकी मदद करनी चाहिए। किशोर होते हुए भी इस युवती का पति यदि समझदार है, तो उसे

है। अधिकतर ऐसी स्त्रियाँ खुद अपढ़ होती हैं; अर्थात् उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं होता, और अगर होता भी है, तो वे बेचारियाँ यह नहीं जानतीं कि क्या किया जा सकता है। मुमकिन है कि वे यह भी जानती हों, फिर भी वैसे उपायों से लेने में वे अपने को असमर्थ पाती हैं। इसलिए रिश्तेदारों सहायता से ही उनका प्रश्न हल हो सकता है। इन पत्र लेखक ने जिस लेख का ज़िक्र किया है, वह समझदार और समर्थ स्त्रियों के लिए लिखा गया था। इन दोनों बहनों को अगर क़ानून की सहायता मिल सकती हो तो उन्हें उससे लाभ उठाना चाहिए, स्थानीय लोक-मत बनाया जा सके तो बनाना चाहिए। धन की या राज्य-सत्ता की प्रतिष्ठा से चौंधिया जाने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं है। ऐसी स्त्रियों को आश्रय देने वाले महिला-आश्रम भी गुजरात में मौजूद हैं। वहाँ रख कर उन्हें शिक्षिता और स्वावलम्बिनी बनाने का प्रयत्न भी साथ-साथ करना चाहिए। अकसर झूठी लोकलाज के कारण ऐसे अन्यायों पर पर्दा डाल दिया जाता है, लेकिन मेरी दृष्टि में यह अनावश्यक और अनुचित है। बहुतेरे अन्याय और दुराचार ऐसे हैं, जो प्रकाश पाते ही मिट जाते हैं।

स्त्री की दर्दनाक हालत

एक नौजवान के पत्र का सार इस तरह है:—

"पन्द्रह वर्ष के एक बालक का ब्याह सत्रह वर्ष की एक युवती के साथ हुआ है। युवती अपने नामधारी पति से नाराज है, पति तो बड़ा होने पर इच्छानुसार दूसरा ब्याह कर सकता है। लेकिन युवती क्या करे? माता-पिता और समाज की दृष्टि से तो उसकी कोई इच्छा हो ही नहीं सकती। दूसरे वह युवती अशिक्षिता है, इस वजह से वह पुनर्विवाह का विचार भी नहीं कर सकती, अगर वह कुछ करना चाहती है तो सिर्फ अनीति; ऐसी युवती क्या करे? उसका रक्षक कौन हो?"

हिन्दू-संसार में ऐसी करुण-कथाओं के अगणित उदाहरण मिल सकते हैं। यह सम्भव नहीं कि उनका प्रतिकार शीघ्र ही किया जा सके। कई बातें ऐसी हैं जिन्हें इस समय सिवाय सह लेने के दूसरा चारा नहीं है। ऐसे मामलों में जो कुछ मुझे सूझता है वह मैं प्रकट करता हूँ। अगर कोई रिश्तेदार ऐसी युवती की मदद करनी चाहे तो उसे दृढ़तापूर्वक उसकी मदद करनी चाहिए। किशोर होते हुए भी इस युवती का पति यदि समझदार है, तो उसे

चाहिए कि वह अनिच्छापूर्वक किये गये युवती के साथ के ज
इस सम्बन्ध से लाभ उठा कर उसे पढ़ाये, खुद उसे अपनी ब
समझे और उसके लिए योग्य पति ढूँढ़ दे। मैं जानता हूँ
पन्द्रह वर्ष के किशोर से इतनी बुद्धिमानी की आशा नहीं की
सकती, लेकिन इस समय इस उम्र के भी परोपकारी बालक
नजरों में हैं और इसी आधार पर मैंने ऊपर की बात लिखी
तीसरा मार्ग है, लोकमत के सुशिक्षित बनाने का—जिन्हें
बेजोड़ विवाहों का पता चले, वे उन्हें प्रकट तो जरूर ही कर
इतना होते हुए भी अगर इस प्रकार की अभागिनी कन्याओं
रक्षा न हो सके, तो भी यह निश्चित ही है कि धीरे-धीरे
घटनायें कम अवश्य होती जायँगी।

उल्लिखित विचार-धारा से यह नतीजा निकलता है कि
कामों के लिए, सत्यपरायणता, निर्भयता, दृढ़ता, और सा
की जरूरत है। जो विवाह, विवाह की सच्ची व्याख्या के अनुस
नहीं हुआ है, वह विवाह ही नहीं है, इसी आधार पर
लोग आगे बढ़ सकेंगे। जिसे जाति का, गरीबी का और
ही दूसरी बातों का डर है, वह कभी सुधार कर ही नहीं सक
सुधारकों ने जाने कुर्बान की हैं, दुःख उठाये हैं, निन्दा स
भूखों मरे हैं। जहाँ इन कामों का अभाव रहा है वहाँ
सुधार नहीं हो सके हैं।

एक डॉक्टर लिखते हैं—

"मैं डॉक्टर हूँ। सन १९२१ ई० में एम० बी०, बी०

स्त्री पुरुष का शिकार बन जाती है, तब उसके साथ समाज क्रू पूर्ण बर्ताव करता है, अगर समाज इन मामलों में उदारता से का न लेगा तो इस तरह के जुर्म होते ही रहेंगे और डॉक्टर भी धन लालच से मदद करते रहेंगे।"

यह डॉक्टर धन्यवाद के पात्र हैं। उनका कहना बिल्कुल ठीक है कि ऐसे मौकों पर बहुतेरे डॉक्टर फ़ीस के लोभ में पड़ कर लोगों के पापों में मददगार होते हैं। लेकिन यह लेख मैं डॉक्टरों को उनका धर्म बताने के लिए नहीं लिख रहा हूँ। यह पत्र स्त्री की दुर्दशा का दूसरा चित्र है। उसका इलाज वही है जो ऊपर बताया गया है। अहिंसा-धर्म के नाम पर अहिंसा को डुबाने वाला आज कल का समाज इस तरह की निर्दयता से काम लेते समय बिल्कुल भी आगा-पीछा नहीं सोचता, हर दिन स्त्री रूपी गौ की हत्या किया ही करता है। स्त्री के सतीत्व की रक्षा के बहाने वह उस पर कई प्रकार के अंकुश लादता है, लेकिन जबर्दस्ती किसी की पवित्रता की रक्षा नहीं की जा सकती।

स्त्री या पुरुष पर्दे की ओट में पाप करें इससे बेहतर तो यह है कि वे जाहिरा तौर पर नम्रता में अपनी कमजोरी को क़बूल करके पुनर्विवाह वगैरः करें और पाप से बचें। मगर स्त्री की मदद कौन करे? मर्द ने तो अपना रास्ता साफ बना लिया है, लेकिन स्त्री पर ज़ुल्मी क़ायदे लाद कर पुरुषों ने जो दोष अपने सिर ओढ़े हैं, उनके प्रायश्चित के तौर पर उन्हें अब स्त्री की मदद करनी चाहिए। जिन बूढ़े के विचार एक बारगी ही पुख्ता हो गए हैं, उनसे ऐसे

प्रायश्चित की आशा रखना फ़िज़ूल है। हाँ, नौजवानों का मर्यादा पालन करते हुये स्त्रियों की मदद करना मुमकिन है। आख़िर स्त्री का उद्धार तो स्त्री ही करेगी; लेकिन आज भारत में ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत थोड़ी है। जब नौजवान बहुत बड़ी तादाद में स्त्री-जाति की मदद के लिए दौड़ पड़ेंगे सभी स्त्रियों में जागृति फैलेगी और उनमें से सेवा-परायणा वीरबालाएँ व वीरांगनाएँ पैदा होंगी

स्त्री पुरुष का शिकार बन जाती है, तब उसके साथ समाज पूर्ण बर्ताव करता है, अगर समाज इन मामलों में उदारता से न लेगा तो इस तरह के जुर्म होते ही रहेंगे और डॉक्टर भी धन लालच से मदद करते रहेंगे।"

यह डॉक्टर धन्यवाद के पात्र हैं। उनका कहना बिल्कुल ठीक है कि ऐसे मौकों पर बहुतेरे डॉक्टर फीस के लोभ में पड़ कर लोगों के पापों में मददगार होते हैं। लेकिन यह लेख मैं डॉक्टरों को उनका धर्म बताने के लिए नहीं लिख रहा हूँ। यह पत्र स्त्री की दुर्दशा का दूसरा चित्र है। उसका इलाज वही है जो ऊपर बताया गया है। अहिंसा-धर्म के नाम पर अहिंसा को डुबाने वाला आज कल का समाज इस तरह की निर्दयता से काम लेते समय बिल्कुल भी आगा-पीछा नहीं सोचता, हर दिन स्त्री रूपी गौ की हत्या किया ही करता है। स्त्री के सतीत्व की रक्षा के बहाने वह उस पर कई प्रकार के अंकुश लादता है, लेकिन जबर्दस्ती किसी की पवित्रता की रक्षा नहीं की जा सकती।

स्त्री या पुरुष पर्दे की ओट में पाप करें इससे बेहतर तो यह है कि वे जाहिरा तौर पर समाज में अपनी कमजोरी को कबूल करें पुनर्विवाह वगैरह करें और पाप से बचें। मगर स्त्री की मदद कौन करे? मर्द ने तो अपना रास्ता साफ बना लिया है, लेकिन स्त्री पर जुल्मी कायदे लाद कर पुरुषों ने जो दोष अपने सिर ओढ़े हैं, उनके प्रायश्चित के तौर पर उन्हें अब स्त्री की मदद करनी चाहिए। [illegible] हो चुका हो गए हैं, उनमें ऐसे भिन्न मुद्दे के विचार यह [illegible]

लाचार हैं। कृपा कर कहिए हम या हमारी बहन क्या करें? हिन्दू धर्म की दर्द-भरी अवस्था का यह एक चित्र है—उस हिन्दू धर्म की जिसमें स्त्रियों को सर्वथा पुरुषों की दया पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसमें स्त्रियों को न कोई अधिकार प्राप्त है न शिक्षायतें हो। अगर आदमी निर्दय और हृदयहीन है, तो बेचारी स्त्री का कहीं कोई सहारा इस दुनियाँ में नहीं। आदमी अपने जीवन में चाहे जितना व्यभिचार करे, चाहे जितनी शादियाँ करे, कोई उसकी ओर अँगुली उठानेवाला नहीं, लेकिन स्त्री ज्यों एक बार ब्याही गई कि उसे सर्वथा अपने स्वामी की दया का पात्र बन कर रहना पड़ता है। एक दो नहीं हजारों बहनें अन्याय का शिकार बन-बनकर रात-दिन आर्त-स्वर से रोती-कलपती रहती हैं। जब तक हिन्दू-धर्म से ये और ऐसी ही अन्य बुराइयों का नाश नहीं होता, तब तक क्या उन्नति की आशा की जा सकती है?"

पत्र-लेखक एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने सारे पत्र में अपनी बहन के दुखों का रोमांचकारी चित्र खींचा है। इस सारांश में वे सब बातें नहीं आ सकतीं। पत्र-लेखक ने अपना पूरा नाम और पता भी भेजा है, वह असीम दुःख की वेदना का परिणाम होने से क्षम्य भले हो, किन्तु उनका यह सर्वव्यापी कथन एक उदाहरण के आधार पर खड़ा किया गया है, अतः अति रञ्जित है, क्योंकि आज भी लाखों हिन्दू ललनाएँ अपनी गृहस्थी की रानी बन कर पूर्ण संतोष और सुख की

हिन्दू-पत्नी

नीचे एक भाई के लम्बे पत्र का सारांश दे रहा हूँ, उन्होंने अपनी विवाहिता बहन के दुःखों का वर्णन किया है—

"थोड़े समय पहले मेरी बहन का विवाह एक ऐसे व्यक्ति के साथ हो गया, जिसके चरित्र से हम अनजान थे। यह व्यक्ति बाद में इतना लम्पट और विषयी साबित हुआ है कि अनन्त व्यभिचार और विषय-भोग करते हुए भी उसकी वासना तृप्त नहीं होती। मेरी अभागिनी बहन को ब्याह के बाद शीघ्र ही पता चला कि उसके 'स्वामी' दिन-दिन निर्बल होते जा रहे हैं। उसने उन्हें समझाया। लेकिन उसके इस औद्धत्य को वे सह न सके और उसे सबक़ सिखाने की गरज से उसके सामने ही व्यभिचार करने लगे। वह उसे बेंतों से मारते, खड़ी रखते, औंधी टाँगते और भूखों मरने को विवश करते हैं। एक बार अपने 'स्वामी' की व्यभिचार लीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए बहन एक खम्भे से बाँध दी गई, जिससे वह भाग न सके। मेरी बहन का हृदय टूक-टूक हो गया है, उसकी निराशा की हद नहीं, उसके सन्ताप को देखकर हमारा हृदय जल उठता है, लेकिन हम

लाचार हैं। कृपा कर कहिए हम या हमारी बहन क्या करें? हिन्दू धर्म की दर्द-भरी अवस्था का यह एक चित्र है—उस हिन्दू धर्म की जिसमें स्त्रियों को सर्वथा पुरुषों की दया पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसमें स्त्रियों को न कोई अधिकार प्राप्त है न रिआयतें ही। अगर आदमी निर्दय और हृदयहीन है, तो बेचारी स्त्री का कहीं कोई सहारा इस दुनियाँ में नहीं। आदमी अपने जीवन में चाहे जितना व्यभिचार करे, चाहे जितनी शादियाँ करे, कोई उसकी ओर अँगुली उठानेवाला नहीं, लेकिन स्त्री जहाँ एक बार ब्याही गई कि उसे सर्वथा अपने स्वामी की दया का पात्र बन कर रहना पड़ता है। एक दो नहीं हजारों बहनें अन्याय का शिकार बन-बनकर रात-दिन आर्त-स्वर से रोती-कलपती रहती हैं। जब तक हिन्दू-धर्म से ये और ऐसी ही अन्य बुराइयों का नाश नहीं होता, तब तक क्या उन्नति की आशा की जा सकती है?"

पत्र-लेखक एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने सारे पत्र में अपनी बहन के दुखों का रोमाञ्चकारी चित्र खींचा है। इस सारांश में वे सब बातें नहीं आ सकतीं। पत्र-लेखक ने अपना पूरा नाम और पता भी भेजा है, वह असीम दुःख की वेदना का परिणाम होने से क्षम्य भले हो, किन्तु उनका यह सर्वव्यापी कथन एक उदाहरण के आधार पर खड़ा किया गया है, अतः अति रञ्जित है, क्योंकि आज भी लाखों हिन्दू ललनाएँ अपनी गृहस्थी की रानी बन कर पूर्ण संतोष और सुख की

ज़िन्दगी बिताती हैं। वे अपने पतियों पर इतना प्रभुत्व रखती हैं कि कोई भी साधारण स्त्री उनसे ईर्ष्या कर सकती है। यह प्रभुत्व प्रेम के कारण उन्हें प्राप्त होता है। पत्र-लेखक ने निर्दयता का उदाहरण जो पेश किया है, वह हिन्दू-धर्म की बुराई का चिन्ह नहीं, बल्कि मनुष्य-स्वभाव में निहित उस बुराई का नमूना है, जो किसी एक जाति या धर्म में नहीं पाई जाती, बल्कि सब जातियों और सब धर्मों के मनुष्यों में मिलती है। क्रूर पति के खिलाफ़ तलाक़ दे देने की प्रथा से भी उन स्त्रियों की रक्षा नहीं हुई है, जो न तो अपना अधिकार जताना जानती हैं, न जताना चाहती हैं। अतएव सुधारकों को चाहिये कि वे और नहीं तो सिर्फ़ सुधारकों के ख़ातिर ही अतिशयोक्ति से काम लेने से बाज़ आयें।

तथापि इस पत्र में जिस घटना का उल्लेख किया गया है, वैसी घटनायें हिन्दू-समाज के लिए सर्वथा असाधारण नहीं हैं। हिन्दू-संस्कृति ने स्त्री को पति की अत्यधिक गुलाम बना कर और उसे पति के सर्वथा आधीन रख कर बड़ी भूल की है। इसके कारण पति कभी-कभी अपने अधिकार का दुरुपयोग करते हैं और पशुवत् व्यवहार करने पर उतारू हो जाते हैं। इस तरह के अत्याचार का उपाय क़ानून का आश्रय लेने में नहीं बल्कि विवाहिता स्त्रियों को सच्चे अर्थ में सुशिक्षिता बनाने और पतियों के अमानुषी अत्याचार के विरुद्ध लोक-मत जागृत करने में है। प्रस्तुत मामले में जिस उपाय से काम लेना चाहिए

यह अत्यन्त सरल है। इस सङ्कट-ग्रस्त बहन के दुःख को देखकर रोने या अपनी लाचारी का अनुभव करने के बजाय उसके भाई या दूसरे रिश्तेदारों को चाहिए कि वे उसकी रक्षा करें, उसे यह समझावें, तथा विश्वास दिलावें कि एक पापी दुराचारी पति की ख़ुशामद करना या उसकी सङ्गति की आशा रखना उसका कर्तव्य नहीं है। यह स्पष्ट ही है कि उसका पति उसकी ज़रा भी चिन्ता नहीं रखता, तनिक भी पर्वा नहीं करता। अतएव क़ानून बन्धन को तोड़े बिना ही वह अपने पति से अलग रह सकती है कि उसका विवाह कभी हुआ ही नहीं।

अवश्य ही एक हिन्दू-पत्नी के लिए, जो तलाक़ नहीं दे सकती, इस सम्बन्ध में क़ानून की रू से भी दो मार्ग खुले हैं एक तो मारपीट करने के कारण पति को सज़ा दिलाने का और दूसरा उससे जीविका के लिए आजीवन सहायता पाने का। लेकिन अनुभव से मुझे पता चला है कि अगर सर्वदा नहीं तो बहुधा तो अवश्य ही यह उपाय निरर्थक से भी बुरा सिद्ध हुआ है। इसके कारण किसी भी स्त्री को कभी सुख नहीं मिला, उलटे पति का सुधार असम्भव नहीं तो कष्ट-साध्य ज़रूर बन गया है। समाज को इस रास्ते कदापि न जाना चाहिए, पत्नी को तो किसी हालत में भी न्याय का आश्रय नहीं लेना चाहिए। प्रस्तुत मामले में तो लड़की के माता-पिता उसको निर्वाह कर लेने में सब तरह समर्थ हैं; लेकिन जिन सताई हुई स्त्रियों को यह आश्रय

प्राप्त नहीं, उन्हें भी आश्रय देने वाली अनेक संस्थायें ... दिन-दिन बढ़ रही हैं।

एक और प्रश्न रह जाता है; वे युवती स्त्रियाँ जो अपने पति का साथ छोड़कर अलग होती हैं; या जिन्हें पति स्वयं से निकाल देते हैं, जो तलाक़ से मिलनेवाली सुविधा प्राप्त न कर सकतीं वे अपनी विषयेच्छा को कैसे तृप्त करेंगी ? ... में यह कोई गंभीर प्रश्न नहीं है; क्योंकि जिस समाज ने ... तलाक़ की प्रथा को त्याज्य मान रक्खा है, उस समाज की स्त्रि- एक बार वैवाहिक जीवन का कटु अनुभव पा लेने पर दुबारा विवाह करना ही नहीं चाहतीं। जब किसी समाज का लोकमत इस तरह की सुविधा प्राप्त करना चाहता है, तो मेरे विचार में निस्सन्देह उसे वह मिल भी जाती है।

पत्र-लेखक के पत्र से जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ, उनकी यह शिकायत तो नहीं है, कि पत्नी अपनी विषयेच्छा तृप्त नहीं कर सकती। शिकायत तो पति के भयङ्कर और बेलगाम व्यभिचार की है जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ। मनोवृत्ति को पलट देना ही इसका उपाय है। हमारी अनेक अन्य बुराइयों के समान ही बेबसी की भावना भी एक काल्पनिक बुराई है। दूषित कल्पना के कारण शोक और दुःख का साम्राज्य समाज में फैला हुआ है, वह थोड़े से मौलिक विचार और नये दृष्टि-कोण के पाते ही नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। ऐसे मामलों में मित्रों और रिश्तेदारों को चाहिए, कि वे अत्याचार के शिकार को शिकारी के पञ्जे से छुड़ा

विवाह और विवाह-विधि

इस विषय पर एक परम मित्र के साथ मेरा पत्र-व्यवहार हुआ था; उनका एक पत्र बहुत समय से मेरे पास पड़ा था; आज उसी पत्र का एक महत्व-पूर्ण अंश नीचे दे रहा हूँ—

"विवाह के मंत्रों के सम्बन्ध में आपका पत्र मिला। विवाह की कल्पना के बारे में तो मत-भेद नहीं हैं, किन्तु सवाल सिर्फ दो हैं। शास्त्र-वचनों अर्थात् मंत्रों का अर्थ क्या किया जाय ? और, ब्याहे आनेवाले स्त्री-पुरुषों के समक्ष प्रतिज्ञा के रूप में कौन-सा आदर्श रक्खा जाय ? मेरी कल्पनानुसार विवाह के उद्देश्यों का क्रम नीचे लिखा है—

से रहना ही स्वाभाविक है। विषयेच्छा विवाह का मूल प्रेरक कारण भले ही हो, विवाह की सार्थकता तो धर्मानुमोदित सन्तानोत्पत्ति में ही है। जिस दिन सन्तति की इच्छा नहीं रहती, उस दिन विवाह भी नहीं रहता। उस दशा में विवाह या तो पतन की दशा में चल कर व्यभिचार का रूप धारण करता है, या ऊँचे उठ कर असाधारण आत्मिक सम्बन्ध में बदल जाता है। जिन लोगों की दृष्टि में आरम्भ से ही इस तरह का आत्मिक सम्बन्ध एक मात्र प्रेरक कारण रहा हो, वे विवाह ही न करें, उन्हें ब्याह करने का कोई कारण नहीं, कोई हक़ भी नहीं। जब तक सन्तानोत्पत्ति की इच्छा बनी है, तब तक दोनों का सम्बन्ध धर्म्म है, उदात्त है, मगर शुद्ध आध्यात्मिक नहीं। संतति की वासना के न रहने पर विवाह-सम्बन्ध भी नहीं रहता, तथापि सहजीवन बुरा नहीं, अर्थात् उस दशा में दोनों के बीच सख्य-भाव का पवित्र आध्यात्मिक सम्बन्ध दृढ़ होता है। इस सम्बन्ध में स्वार्थ, मोह अथवा जड़ता न होने से इसमें अन्य-निष्ठा का महत्व नहीं रह जाता। व्यभिचार का इसमें स्थान नहीं होता, क्योंकि आध्यात्मिक सम्बन्ध में अतिरेक जैसी कोई चीज ही नहीं होती।

अगर यह विचार-धारा ठीक हो तो, सन्तानोत्पत्ति-रूप विवाह जो मुख्य और एक मात्र निर्णायक हेतु है उसे प्रतिज्ञा में स्थान मिलना चाहिए। हमारे पूर्वजों के इस वचन से कि सन्तति के अभाव में गृहस्थ-आश्रम अभद्र है, असहमत हों, हम भले ही उदासीन रहें, लेकिन विवाह के मुख्य उद्देश्य को अमान्य कदापि न रखें।

सप्त-पदी की हर एक प्रतिज्ञा स्वाभाविक, सादी और हर किसी मनुष्य की समझ में आने योग्य है। हर एक शब्द का आध्यात्मिक अर्थ करने और व्यावहारिक अर्थ को भुला देने से, न तो हम सत्य का पालन करते हैं और न समाज को ही ऊँचा उठाते हैं। संकुचित अर्थ को व्यापक अवश्य बनाना चाहिए-इसमें सत्य है, औचित्य है। सप्त-पदी का अर्थ कितना सीधा-सादा और सरल है-दोनों मिलकर अन्नादि प्राप्त करें और उनका सेवन करें; दोनों के सहयोग से हर तरह के सामर्थ्य में वृद्धि हो; घर में धन-धान्य इत्यादि बढ़ें, ऐहिक और धार्मिक सम्पत्ति बढ़े; दोनों पति-पत्नी और कुटुम्ब के और सब लोग सुख एवं संतोषपूर्वक रहें; बाल-बच्चे हों; बाद में जीवन में परिवर्तन होने लगे; आखिरकार परम-आप्त, परम मित्र का शुद्ध, स्वच्छ, आध्यात्मिक सम्बन्ध सुदृढ़ बना रहे।

कन्या किसे देना चाहिये और किसे न देना, इस विषय पर विचार करते हुए शास्त्रकारों ने दश दोषों पर ध्यान रखने की सलाह दी है। जो युवक विवाह-मुख हैं, मुमुक्षु हैं और जो साहसिक एवं शूर हैं, उन्हें कन्या न दी जाय। जब उद्देश्य ही सन्तानोत्पत्ति का न हो तो कन्या विवाह क्यों करे ? कैसे करे ? पुत्रेच्छा के निष्फल जाने पर विवाह का स्वरूप बदल जाता है; अतः इतना स्पष्ट करना आवश्यक है कि विवाह से 'प्रजाभ्यः'

'धर्मे च अर्थे च कामे च नाति चरामि' प्रतिज्ञा में मुमुक्षु के लिए मर्यादा है। यह जरूरी नहीं कि विवाह-सम्बन्ध मरते दम तक क़ायम रहे, मगर 'अ-मुमुक्षा-मुमुक्षु' बनने की इच्छा के उदय होने तक-तो उसे बना ही रहना चाहिए। मुमुक्षा के तीव्र, शुद्ध और स्थिर बन जाने पर विवाह की दृष्टि से विवाह सम्बन्ध नहीं रह जाता। यानी सप्त-पदी की प्रतिज्ञा में प्रजोत्पादन का उल्लेख न होता तो भी मैं आपकी विवाह-सम्बन्धी कल्पना से सम्पूर्ण सहमत होते हुए इस बात का आग्रह करता कि उसमें इस आशय की (सन्तानोत्पत्ति) की प्रतिज्ञा बढ़ा दी जानी चाहिए। पुत्रेषणा के कारण ही दाम्पत्य-सम्बन्ध धर्म की दृष्टि से (मोक्ष की दृष्टि से नहीं) पवित्र बनता है, इसके कारण अन्योन्य निष्ठा उत्पन्न हो सकती है। इसी के द्वारा संयम धर्म का ज्ञान मिलता है और यह कह कर चुप नहीं बैठा जा सकता कि विवाह के गर्भ में ही यह बात छिपी हुई है।

अब शास्त्र के अर्थ की बात और बच रही है। आप इस बात पर विचार करने को तैयार नहीं कि किस वचन में-से कौन अर्थ निकल सकता है और कौन नहीं। पुराने शास्त्र-कार एकाक्षरी कोष की सहायता से किसी भी श्लोक के आठ-आठ, दस-दस अर्थ निकाल लेते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी धात्वर्थ के बल पर वेदों का बहुत सुन्दर अर्थ किया है। मगर वह सच है या नहीं, यह एक दूसरा सवाल है। मन्त्रों में-से अधिकाधिक आत्मोन्नति कर अर्थ निकाला जा सकता हो तो अवश्य निकाला जाय, मगर इनके लिए प्रामाणिकता की हत्या न की जानी चाहिए। वैसे, मंत्रों के अर्थ के सर्वमान्य नियम बने हुए हैं ही। किसी वचन का अर्थ, पूर्वापर सम्बन्ध, संदर्भ, प्रयोजन, आस-पास के इतिहास, तथा परम्परागत अर्थ को विशेष महत्व न दें तो भी हर्ज नहीं, क्योंकि भूल दीर्घ-काल तक एक-सी होती आ सकती है। किन्तु अगर प्रसंग, हेतु, आस-पास के दूसरे मंत्र इत्यादि बातें साफ़-साफ़ किसी एक अर्थ को पुष्ट करती हों, परम्परा में भी एक वाक्यता हो, इतिहास से भी उसे पुष्टि मिलती हो, तो मनस्विता के कारण पुराने मंत्रों का नया अर्थ करने की अपेक्षा प्रामाणिकता-पूर्वक उसमें रद्दो बदल करना ही सच्चा मार्ग है। 'प्रजाभ्यः' के बदले 'सर्व भूत् हितार्थाय' के रूप में सीधा-सादा परिवर्तन कर देना बुद्धि गम्य है। अगर किसी एकाध शब्द का कोई दूसरा अर्थ भी किया जा सकता हो तो उसके कारण सारे मंत्र का अर्थ नहीं बदला जा सकता।

अगर किसी मंत्र के समानतया दो अर्थ होते हों तो धर्म की दृष्टि से नीति-पोषक अर्थ ही मान्य होना चाहिए। लेकिन मंत्र का सादा और निःसंशय अर्थ हमारी रुचि के बिलकुल विरुद्ध हो अथवा अनीति-पोषक हो तो हम उसे अमान्य कर दें; खींच-तान करके दूसरा अर्थ निकालने की कोशिश कदापि न करनी चाहिए। इससे जनता की आदत में बुराई पैदा होती है और शास्त्रार्थ के क्षेत्र में अराजकता उत्पन्न हो जाती है। 'क़ानूनी-कल्पना' (लीगल फ़िक्शन) की भी अपनी मर्यादा होनी चाहिए।

मेरी कल्पनानुसार तो विवाह की प्रतिज्ञा में सन्तानोत्पत्ति का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए। अगर यह इष्ट न हो तो पुराने शब्द 'प्रजाभ्यः' को हटा कर (व्याकरण द्वारा इसका दूसरा अर्थ हो सकता हो तो भी) जान-बूझ कर कोई असंदिग्ध शब्द उसके बदले रख देना चाहिए।

प्राचीन वचन है कि सात क़दम साथ चलने से मित्रता दृढ़ होती है। यह समझना कि सड़क पर सात क़दम चलने से यह बन पड़ता है, भूल है। सहजीवन में सात सीढ़ियाँ एक साथ बिताने पर शुद्ध निष्काम मित्रता दृढ़ होती है। प्रतिज्ञा में इसी तरह के विकास-क्रम की बात कही गई है। हमें चाहिये कि 'सभी धान बाइस पसेरी' के अनुसार इसकी उपेक्षा कर हम अर्थ का अनर्थ न करें।

हमारी विवाह-विधि में ऐसी कोई बात होनी चाहिए, जिससे लोग यह समझ सकें कि विवाह को किन्हीं दो पंक्तियों का साधारण

जीवन बितानेवाले जगत् का प्रवाह इन दिनों विवाह को सन्तानोत्पत्ति से पृथक् मानने की ओर बह रहा है। शीघ्र ही यह मान लेने का मैं कोई कारण नहीं देखता कि स्त्री-पुरुष-जैसे भिन्न लिंग वाले जोड़ों की संगति के मूल में सन्तानोत्पत्ति की भावना होती ही है। दम्पति प्रेम की निर्मलता में प्राणी-मात्र की एकता की साधना क्यों न हो? आज जो बात असम्भव प्रतीत होती है, कल वही क्यों न सम्भव हो जाय? संयम की मर्यादा ही क्या हो सकती है? हमें चाहिये कि हम मनुष्येतर प्राणी का उदाहरण सामने रख कर मनुष्य की उन्नति की सीमा न आँकें; ईश्वर-प्राणियों का दृष्टान्त हमारे लिए वहीं तक उपयोगी है, जब तक उससे हमारा पतन नहीं होता।

अगर स्त्री-पुरुष का विषय-सम्बन्ध पाँच साल बाद बन्द करना है तो मूल से ही उसे बन्द करना इष्ट क्यों न हो? इससे अगर विवाह की संख्या घटे तो भले न घटे, अथवा इस तरह के विवाह कम न हों तो भले न हों। मेरी कल्पना की सचाई के लिए तो एक ही शुद्ध उदाहरण काफी है। 'जया-जयन्त' आज भले ही नानालाल 'कवि की कल्पना' में रम रहे हों, किन्तु कल वे ही मूर्ति-मन्त न होंगे, इसका क्या प्रमाण?

जाय ? सन्तानोत्पत्ति को कर्तव्य न मानने पर भी वह तो होती रहेगी। अतएव अगर इस सम्बन्ध की प्रतिज्ञा हो ही तो यों होना चाहिये 'हम रति-सुख के लिए नहीं भोगेंगे, बल्कि सन्तान को भरण-पोषण के लिए अपनी योग्यता में विश्वास होने पर ही सन्तानोत्पत्ति के लिए उस सुख का उपभोग करेंगे।' पाठक समझ सकेंगे कि इसमें और सन्तानोत्पत्ति की प्रतिज्ञा करने में आकाश-पाताल का अन्तर है। संतानोत्पत्ति की प्रतिज्ञा के कारण आज हिन्दू-संसार में पुत्र की इच्छा को लेकर जो अनिष्ट रात-दिन हो रहे हैं, उन्हें कौन नहीं जानता ?

किसी जनता के लिए ऐसे समय की सहज ही कल्पना की जा सकती है, जब सन्तानोत्पत्ति विवाह का मुख्य उद्देश्य मान लेना आवश्यक हो पड़े। आज फ्रांस में यही युग वर्तमान है। फ्रांस की जनता ने बे-लगाम होकर विषय-सुख भोगने के लिए सन्तानोत्पत्ति पर कृत्रिम अंकुश रखे थे, उसका परिणाम यह हुआ कि अब वहाँ जन्म के मुकाबले मृत्यु बढ़ गई है। अतएव अब लोगों को सन्तानोत्पत्ति का धर्म सिखाया जाता है। जहाँ लड़ाई के कारण पुरुष आपस में कट मरे हैं, वहाँ भी सन्तानोत्पत्ति का धर्म बरत रहा है, यही नहीं बल्कि एक पुरुष का अनेक स्त्रियों के साथ ब्याह कर लेना भी धर्म माना जाता है। पहले उदाहरण में विषय-भोग की अतिशयता है, दूसरे में मनुष्य-हिंसा पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है। जो परिणाम इसका निकला वह अनिवार्य ही था। अतएव उन-उन युगों में अधर्म होते हुए भी ये बातें धर्म

के नाम से विख्यात हुई। वास्तविक धर्म तो यह था। 'तुमने खूब विषय भोग किया, अब नष्ट होओ; तुम पशु से भी बदतर साबित हुए, आपस में कट मरे, अब जो बचे हो, सो भी मर मिटो।' इस त्रिविध नाश में जगत का हित है, क्योंकि इसमें कर्म का सीधा फल भोगने को मिलता है। भगवद्गीता भी यही कहती है। महाभारतकार ने भी शेष मुट्ठी भर लोगों का नाश ही चित्रित किया है।

आज जब कि हम विवाह के अनेक दूसरे शुभ उपयोगों का अनुभव कर रहे हैं, हम उन्हें ही अपना लक्ष्य क्यों न बना लें और सन्तानोत्पत्ति को उसके स्वभाव पर क्यों न छोड़ दें? मुझे यही इष्ट और आवश्यक मालूम होता है। हम संकल्प सेवा का करें, भोग विवश होकर भोगें।

अब मैं विधि के अर्थ पर आता हूँ। मुझे यह कबूल करते हुए ज़रा भी संकोच नहीं होता कि सत्य पर प्रहार करके किया गया अर्थ सर्वथा त्याज्य है। लेकिन जहाँ परस्पर सम्बन्ध का विचार करते हुए भी इष्ट किन्तु नया ही अर्थ उत्पन्न हो सकता हो, वहाँ वही अर्थ करने का हमें अधिकार है। यही हमारा धर्म भी है। पहले जिन अर्थों की कल्पना भी न की गई हो, वैसे [illegible] अर्थ लोग सदा करते ही रहेंगे। लोकोन्नति के साथ-साथ वाहनों में साधनों की भी उन्नति होगी ही। उसके परस्पर का एक बड़ा साधन भाषा है, जिसका सदा विकास होता रहेगा। एक नये शब्दों और नये वाक्यों की रचना द्वारा और

दूसरे उन्हीं वाक्यों और उन्हीं शब्दों के नये अर्थों द्वारा किस समय कौन-सा अर्थ उचित है और किस परिस्थिति में किसे ग्रहण करना चाहिये, इसका निर्णय लोगों की विवेक-बुद्धि पर निर्भर रहेगा; इसमें कोई सिद्धान्त आड़े नहीं आता। विवेक-पूर्वक किये गये अर्थ शोभास्पद होंगे। उनकी एक ही मर्यादा हो सकती है। उनमें कहीं लवलेश भी सत्य का लोप नहीं।

मैंने इन पंक्तियों में इस बात पर विचार नहीं किया है कि सप्त-पदी के मंत्रों में कहाँ और क्या सुधार करना उचित है। क्योंकि उक्त दो मूल विवादास्पद बातों को मन में स्पष्ट कर लेने पर संस्कार के रूप का निश्चय करना तो एक सहज-सी बात हो पड़ती है।

विवाह में सादगी

एक संवाददाता ने हमारे पास फरोंची के एक विवाह समारंभ के समाचार भेजे हैं। कहा गया है कि वहाँ के एक धनवान सेठ श्री लालचन्द्र जी ने अपनी १६ वर्ष की लड़की के ब्याह के मौक़े पर तमाम फ़िज़ूल-खर्चियाँ बन्द कीं और विवाह समारंभ को उदात्त धार्मिक रूप देकर उस अवसर पर कम-से-कम खर्च किया। समाचारों से पता चलता है कि सारे समारंभ में दो घण्टे से ज्यादा का समय नहीं लगा, वैसे आमतौर पर विवाह के मौक़ों पर कई दिन तक फ़िज़ूल-खर्चियाँ होती रहती हैं। विवाह-विधि का सारा काम एक विद्वान् ब्राह्मण की देख-रेख में उन्हीं के हाथों कराया गया था। उन्होंने वर-कन्या को उन सब मन्त्रों का अर्थ भी बतलाया जो वर-वधू को बोलने पड़े थे। मैं सेठ लालचन्द और उनकी धर्मपत्नी को, जिन्होंने बहुत दिनों से अपेक्षित इस सुधार के कार्य में अपने पति का पूरा-पूरा साथ दिया है, हृदय से बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि देश के दूसरे धनी लोग भी सर्वत्र इस उदाहरण का अनुकरण करेंगे। खादी-प्रेमी यह प्रसन्न होंगे कि सेठ लालचन्द और उनकी धर्मपत्नी मक्के

खादी-प्रेमी हैं और दोनों वर-वधू भी खादी में पूर्ण श्रद्धा रखते और सदा खादी पहनते हैं। यह विवाह समारंभ मुझे आगरा के विद्यार्थियों की सभा का स्मरण कराता है; उन्होंने एक मित्र द्वारा दी गई सूचना को पुष्ट किया था कि संयुक्त-प्रान्त के कालेजों और विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी छोटी उम्र में ब्याह दिये जाने के लिये उत्सुक रहते हैं और एक तरह माता-पिताओं को कीमती वस्तुएँ खरीदने, फ़िज़ूल-खर्ची करने एवं बड़े-बड़े भोज या बड़ा दायजे देने को विवश करते हैं। मेरे मित्र ने कहा था कि अत्यन्त उच्च शिक्षा प्राप्त माता-पिता भी सम्पत्ति के मिथ्याभिमान से बरी नहीं हैं, और इसलिए जहाँ तक रुपया बहाने से सम्बन्ध है, वे अनपढ़ मगर धनवान व्यौपारियों को भी मात कर देते हैं। ऐसे सब लोगों के लिए सेठ रामचन्द्र जी का ताज़ा उदाहरण और सेठ जमनालाल जी का कुछ समय पूर्व का उदाहरण, एक पदार्थ-पाठ होना चाहिये, जिससे उत्तेजना ग्रहण कर वे तमाम फ़िज़ूल-खर्चियों से हाथ खींच लें। किन्तु माता-पिताओं से अधिक नवयुवकों का यह कर्त्तव्य है कि वे बाल-विवाह का ज़ोरों से विरोध करें, खास कर विद्यार्थी-अवस्था में विवाहों का तो खूब ही विरोध करें और हर तरह तमाम फ़िज़ूल-खर्चियाँ बन्द करवायें, विवाह की धार्मिक विधि के लिए तो १०) से ज़्यादा की ज़रूरत न होनी है, न होनी ही चाहिए और न विवाह-विधि के सिवा और किसी बात को विवाह का आवश्यक अंग ही मानना चाहिए। प्रजातन्त्र-वाद के इस ज़माने में जब कि धनी-[illegible] ऊँच नीच आदि के भेदों

विवाह का तत्त्व ज्ञान

[थर्स्टन नामक अमेरिकन लेखक की 'विवाह का तत्वज्ञान' नामक पुस्तिका के मुख्य अंश का सारांश नीचे दिया जा रहा है।]

पुस्तक के प्रकाशक का कहना है कि लेखक महोदय अमेरिका की सेना में १० वर्ष नौकर रहे और 'मेजर' के पद तक पहुँच कर सन् १६१६ में नौकरी छोड़ कर निवृत्त हुए, तब से वे न्यूयार्क में रहते हैं। इन १८ वर्षों मे उन्होंने जर्मनी, फ्रान्स, फिलिपाइन्स-द्वीप-समूह, चीन और अमेरिका में विवाहित दंपतियों की स्थिति का खूब अध्ययन किया है। इस अभ्यास के मूल में लेखक की अपनी अवलोकन शक्ति तो है ही, किन्तु इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रसूति-शास्त्र में निपुण तथा स्त्री-रोग चिकित्सक सैकड़ों डाक्टरों से पत्र-व्यवहार भी किया। लेखक ने इसके अतिरिक्त सेना में भर्ती होने वाले उम्मेदवारों की शारीरिक योग्यता की जाँच के आँकड़ों तथा सामाजिक आरोग्य-रक्षक मंडलों के इकट्ठा किये दूसरे आँकड़ों का भी ठीक उपयोग किया है। लेखक के सैकड़ों डाक्टरों से पूछे हुए प्रश्न और उनके उत्तर सुनिये।

७५ प्रतिशत डाक्टर लिखते हैं कि संभव है।

इसके अलावा लेखक ने बहुत-से दिल को दहलानेवाले आँकड़े दिये हैं, जो विचारणीय हैं। सन १९२० में अमेरिका की सरकार ने 'सेना में' लिये जानेवाले लोगों की त्रुटियों के सम्बन्ध में एक किताब छापी थी, उसमें-से ये आँकड़े दिये गये हैं—

सेना में भर्ती करने की योग्यता के संबंध में कितने आदमियों की परीक्षा ली गयी ?

—२५ लाख १० हजार।

इनमें-से कितने किसी-न-किसी शारीरिक या मानसिक बीमारी से ग्रसित थे ?

—१२ लाख ९८ हजार।

कितने सेना-संबंधी काम के लायक न थे ?

—५ लाख ४६ हजार।

इतनी जाँच के पश्चात् तथा अपने कई सम-व्यवसायी डाक्टरों के अनुभव पर-से लेखक ने कई अनुमान निकाले हैं, जो उसके ही शब्दों में दिये जाते हैं।

१—केवल इसी लिए कि पुरुष स्त्री की परवरिश करता है और स्त्री उसकी विवाहिता कहलाती है वह पुरुष की गुलाम बनकर रहे और नित्य एक ही घर में उसके साथ रह कर अथवा एक ही बिस्तर पर सोकर नित्य ही उसके विषय का साधन बने, यह प्रकृति का नियम नहीं है।

२—सर्वत्र ऐसा रिवाज पड़ गया है कि विवाह-बंधन में रहने

से ही पुरुष की विषयेच्छा को संतुष्ट करने के लिये स्त्री बंधी हुई है और इस रिवाज के परिणाम-स्वरूप रात-दिन विषय-भोग का अमर्यादित साधन बन कर विवाहिता स्त्रियों में-से नब्बे प्रतिशत तो वेश्या के समान जीवन बिताती ही हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने का कारण यह है कि विवाहिता स्त्री का पति के साथ वेश्यापन स्वाभाविक और उचित माना जाता है; क्योंकि विवाह का कानून ऐसा ही मतवाला है और यह भी माना जाता है कि पति का प्रेम क़ायम रखने के लिये स्त्री उसकी इच्छा पूरी करने को बँधी हुई है।

इस प्रकार से प्रचलित निरंकुश विषय-भोग के अनेक भयंकर परिणाम देखने में आते हैं—

क—स्त्री के ज्ञान-तंतु अतिशय निर्बल पड़ जाते हैं, शरीर रोग का घर बनता है, स्वभाव चिड़चिड़ा और उत्पाती हो जाता है, और जो बालक पैदा होता है, उसकी भी पूरी सेवा-सँभाल वह नहीं कर सकती हैं।

ख—ग़रीब-वर्ग में इतने बालक उत्पन्न होते हैं कि उन्हें पूरा भरण-पोषण देना, उनकी सेवा-सँभाल रखना, असम्भव हो जाता है। ऐसे बालकों को कई प्रकार के रोग हो जाते हैं, और बड़े होने पर वे कई प्रकार के कुकृत्यों के शिकार हो जाते हैं।

३—ऊँच वर्ग में निरंकुश विषय-भोग के कारण प्रजोत्पत्ति को रोकने के लिए गर्भ-पात के साधनों का उपाय काम में लाया जाता है। इन साधनों का उपयोग अगर आम-वर्ग की स्त्रियों को सिखलाया जाय तो प्रजा रोगी, अनीतिमान् और कष्ट-प्रद

होगी और अंत में उसका विनाश ही होगा।

४—अतिशय संभोग के कारण पुरुष का पुरुषत्व नष्ट होता है, वह काम करके अपना निर्वाह करने को भी अशक्त होता है, और अनेक रोगों के परिणाम-स्वरूप वह अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त होता है। अमेरिका में आज विधुरों की अपेक्षा २० लाख अधिक विधवाएँ हैं। इन विधवाओं में बहुत ही थोड़ी-सी लड़ाई के परिणाम से विधवा बनी हैं। विवाहित पुरुषों का बड़ा भाग ५० वर्ष की उम्र तक पहुँचने के पहले ही जर्जरित हो जाता है।

५—अतिशय संभोग के कारण पुरुष और स्त्री दोनों में एक प्रकार की विरक्ति-सी आ जाती है। दुनियाँ में आज जो दरिद्रता है, शहरों में जो गंदे और गरीब मुहल्ले हैं, वे आदमी को मज़दूरी न मिलने के कारण उत्पन्न नहीं हुए हैं। बल्कि वे आज कल की वैवाहिक स्थिति के कारण उत्पन्न होनेवाले निरंकुश विषय-भोग के परिणाम हैं।

१—इस सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिये कि प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना स्त्री-पुरुष का संयोग नहीं होना चाहिये।

२—इस सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिये कि स्त्री की प्रजोत्पत्ति की इच्छा के बिना, उसे स्पर्श करने का अधिकार केवल पति होने के कारण ही पुरुष को नहीं मिलना चाहिये।

३—इस ज्ञान का प्रचार करना चाहिये कि केवल विवाह-सम्बन्ध में जुड़ जाने से ही स्त्री पति के साथ एक ही कमरे में, एक ही बिस्तर पर सोने के लिये 'बंधी हुई नहीं है' और इतना ही नहीं बल्कि प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना इस तरह से सोना गुनाह है।

लेखक महोदय कहते हैं कि इतने नियम का पालन हो तो जगत् के आधे रोगों का नाश हो जायगा, गरीबी नष्ट हो जायगी, रोगी तथा विकृताङ्ग बालक पैदा नहीं होंगे, विरोध द्वेष और वैर का कड़वापन दूर हो जायगा। स्त्रियों के प्रति की गई सख्तियाँ भी रुकेंगी और स्त्री-पुरुष को जन-कल्याण के लिये पुरुषार्थ करने का मार्ग अधिक परिष्कृत होगा।

सब रोगों का मूल

................'विवाह का तत्त्व ज्ञान'....................
......................................के लेखक ने उसे अपने मित्रों में भेंट की होगी। उनमें-से एक बहन ने उन्हें एक पत्र लिखा है और उनके उस पत्र के प्रत्युत्तर में अपने विचारों को विशेष स्पष्ट करनेवाली और अपने बतलाये हुए अभिप्राय को अकाट्य दलीलों से अधिक मजबूत करनेवाली एक और दूसरी छोटी पुस्तक उन्होंने प्रकट की है। यह पुस्तक पहली पुस्तक से विशेष माननीय और महत्त्व-पूर्ण है।

उस बहन के पत्र का मजमून संक्षेप में यों है। 'आपकी पुस्तक के लिये बहुत धन्यवाद। अत्यन्त विषय-सेवन ही हमारे रोगों का मुख्य कारण है, ऐसा बतलानेवाली आपकी पुस्तक पहली ही कही जा सकती है। विषयेच्छा महापुरुषों में भी होती है। यद्यपि कुछ महापुरुष इससे मुक्त कहे जा सकते हैं। कई एक सामान्य मनुष्यों में यह अत्यन्त प्रबल होती है। परन्तु इसकी वास्तविक शारीरिक आवश्यकता कितनी है, सिर्फ मान ली हुई आवश्यकता कितनी है और केवल आदत पड़ जाने से कितनी बढ़ी है इसकी

जाँच करना ज़रूरी है। तीन वर्ष तक समुद्र पर व्हेल का शिकार करने जानेवाले पुरुष के शरीर पर या ऐसे ही अन्य कारणों से लम्बी मुद्दत तक स्त्री से जुदा रहनेवाले पुरुष के शरीर पर इसका क्या असर होता है, यह जानना हमें आवश्यक प्रतीत होता है। एक बात और है। अति विषय-भोग का अनिष्ट जो आपने बतलाया है, मुझे क़बूल है, परन्तु गर्भाधान रोकने के लिए कृत्रिम-साधनों की ज़रूरत क्यों आप नहीं समझते? गर्भपात या अविवाहितों से होनेवाली प्रजोत्पत्ति की अपेक्षा कृत्रिम साधनों के उपयोग द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकना कहीं बहतर है। प्राकृतिक नियमों से विरुद्ध चलनेवाले मनुष्य प्रजोत्पत्ति रोकने के परिणाम-स्वरूप बाँझ होकर बिना प्रजा के मर जायँ तो उसमें समाज का क्या बिगड़ना है? एक तीसरी बात यह है; मान लो कि हम अब संयमी बन गये, तो भी सामाजिक प्रमाण तभी निभ सकता है जब सामान्यतः प्रत्येक दंपति को तीन संतान से अधिक न हो और इसका यही अर्थ हो सकता है कि दम्पति को चाहिये कि अपने जीवन में संयम के साथ विषय-सेवन करें। संयम क्या शक्य है? शक्ति-सम्पन्न तथा सुन्दर स्वास्थ्य भोगने वाले, पुरुषार्थी मनुष्य क्या दीर्घ काल तक संयम का पालन कर सकेंगे?"

दो कामनायें—इस पत्र के प्रत्युत्तर में लिखी गई पुस्तक का सारांश नीचे देते हैं।

सामान्य पुरुषों में आहार के अतिरिक्त दो कामनाएँ रहा करती हैं, एक कामना सुंदर स्त्री के संग विषय-सेवन की और

दूसरी कामना पुरुषार्थ की अर्थात् धर्म्म, अर्थ और मोक्ष की। दोनों में परस्पर सम्बन्ध है, और दोनों परस्पर असर करनेवाली हैं। मनुष्यों में विवाह होने से पूर्व अत्यंत विषय-भोग भोगने से पुरुषार्थ की कामना मर-सी जाती है और कई में विवाह के बाद अत्यंत विषय-सेवन से मर जाती है अथवा मंद पड़ जाती है। आरोग्य सुख भोगनेवाले वीर्यवंत पुरुषों में विषयेच्छा समान होती है, परंतु यदि पुरुषार्थ की कामना प्रबल हो जाय तो विषयेच्छा दीर्घकाल तक के लिये मंद पड़ जाती है। सच्ची जरूरत है किसी महान ध्येय की और उस ध्येय की प्राप्ति में मनुष्य अपनी समग्र शक्ति खर्च कर डालने का संकल्प कर ले। ऐसे ध्येय अनेक हैं। एक सामान्य ध्येय तो उत्तम प्रजोत्पत्ति का है। अपनी स्त्री को स्वाभाविक संतानेच्छा होवे तब उसकी इच्छा तृप्त करने से स्त्री को प्रसन्न रख कर आरोग्य-संपन्न बालक पैदा करने से उस बच्चे का पालन-पोषण करने में, उसे शिक्षित बनाने में, उसे योग्य नागरिक बनाने में संलग्न रहने से विषयेच्छा लुप्त हो जानी चाहिये। इन तमाम प्रवृत्तियों के लिए उसे शारीरिक शक्ति प्राप्त करनी ही चाहिये, शारीरिक-श्रम भी ख़ूब करना चाहिये। इसके सिवा उसे चाहिये कि स्त्री के साथ एक बिछौने में न सोए। दूसरा ध्येय है कीर्ति का। मनुष्यों की सेवा करके अथवा अन्य कोई भारी पराक्रम कर दिखला के नाम कमा कर संभव है कि मनुष्य यश को प्राप्त करके विषयेच्छा विशेष अच्छी।

अवसर प्राप्त करना चाहें।

को उसी समय दवा भी देनी है। प्रजा के आदर्शों की माता स्त्री होती है, ये आदर्श स्त्री से पुरुषों में आते हैं, इन आदर्शों को पूरा करने की प्रेरणा-उत्साह भी स्त्रियों से मिलता है। अर्थात् मैं कहूँगा कि जिस समाज में स्त्री उर्वशी के समान विक्रम के वश है। वह समाज उत्कर्ष-शाली है। जिन देशों में स्त्री का मूल्य अल्प है, अर्थात् जहाँ स्त्री प्राप्त करने में पुरुषों को कुछ भी मिहनत नहीं करनी पड़ती है उन्हीं देशों में गरीब अधिक होते हैं और वहीं गरीबी का घर होता है।

ह्वेल की शिकार को जानेवाले, स्त्री के वियोग को दीर्घ काल तक सहने वाले मांझियों की दशा का प्रश्न तुमने पूछा है। इन लोगों को खूब काम करना पड़ता है, इसलिये उनके आरोग्य पर तो विषयेच्छा की अतृप्ति का कोई असर पड़ेगा ही नहीं। यदि इन लोगों को कोई काम न हो तब भी उन्हें विषय तृप्ति की अनेक बुरी आदतें पड़ सकती हैं। ये मनुष्य शिकार से वापिस लौट कर अपनी सारी कमाई विषय-भोग और मदिरापान में गवाँ देते हैं क्योंकि इसी ध्येय को सामने रख कर वे शिकार को जाते हैं।

कृतिम साधन—कृतिम साधनों द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकने का जो प्रश्न तुमने पूछा है, वह गंभीर है, उसका जवाब कुछ विस्तार से देना पड़ेगा। इन साधनों से नुकसान नहीं होता ऐसी गवाही तो कोई भी नहीं देगा। ऐसा मैं अपनी खोजों और अवलोकन के परिणाम-स्वरूप जोर देकर कह सकता हूँ।

अनुभवी तथा ज्ञानवान स्त्री-रोग-चिकित्सक तो साफ-साफ कहते

हैं कि इन साधनों का असर शरीर और नीति पर बुरी तरह पड़ता है। और यह स्पष्ट भी है। देखिए एक-दो बातें विचारने योग्य हैं। बालक उत्पन्न हों, इस प्रकार की इच्छा न होने से समय का प्रेरक बल एक भी नहीं रहता। मनुष्य स्त्री से संतुष्ट हो जाता है। और उसकी पुरुषार्थ कामना मंद पड़ जाती है। स्त्री उसको दूसरी स्त्रियों के पास जाने से रोकने के लिए उसे अपना ही गुलाम बनाने की चेष्टा करती है। लम्बे समय तक गर्भाधान का विरोध करने में उनकी विषयेच्छा प्रबल बन जाती है; इसका नतीजा यह होता है कि कुछ ही वर्षों में पुरुष निर्वीर्य बन जाते हैं और किसी भी रोग का सामना करने की उनकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। कई मर्तबा इस निर्वीर्यता को रोकने के लिए अनेक बेहूदे साधनों का उपयोग किया जाता है और परिणाम निकलता है कि स्त्री पुरुष एक दूसरे को तिरस्कार की निगाह से देखते हैं और आखिर विवाह-विच्छेद का मौक़ा आ जाता है।

जानकार मनुष्य कहते हैं कि स्त्रियों को होनेवाले केन्सर जैसे रोगों का मूल इन कृत्रिम साधनों के उपयोग में है। स्त्रियों के कोमल से कोमल मज्जा-तंतुओं पर इन साधनों का अत्यन्त बुरा असर पड़ता है। और उनमें-से अनेक रोग पैदा होते हैं। कई एक प्रतिष्ठित डाक्टरों का ऐसा कहना है कि इन कृत्रिम-साधनों का नतीजा यह निकलता है कि स्त्रियाँ बाँझ हो जाती हैं, स्त्री का जीवन शुष्क हो जाता है और उसका संसार ज़हर बन जाता है।

न्यायाधीश लिंडसे का भ्रम–अमेरिका के जज लिंडसे ने इन कृत्रिम-साधनों की खोज को बहुत बड़ा महत्व दे दिया है और उससे जो भयंकर नाश होता है, उसका उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं। देखिये, पेरिस में पचहत्तर हजार तो रजिस्टर की हुई वेश्याएँ हैं, और उनसे कई गुना अधिक रजिस्टर न की हुई खानगी वेश्याएँ हैं। फ्रॉन्स के अन्य शहरों में भी इस रोग की कुछ हद नहीं, जननेन्द्रिय के रोगों का भी कोई अन्त नहीं है। हजारों की संख्या में स्त्रियाँ इन्हीं रोगों से दुःखित हो डाक्टरों की तलाश में रहती हैं। कई एक वर्ष से फ्रान्स में जन्म-संख्या मृत्यु-संख्या से कहीं गिरी हुई है। नैतिक दृष्टि से फ्रान्सवासियों का नाम जगत में अरुचि पैदा करनेवाला बन चुका है और फ्रान्स की पुत्रियाँ गुलामी के व्यवसाय में अधिक लगी हैं। गत १०० वर्ष में फ्रान्स का यह हाल हुआ है, फिर भी जज लिंडसे को अपने साधनों को नयी खोज के नाम से वर्णन करने में शर्म नहीं आती।

इसमें भयंकर बात तो यह है कि जहाँ एक बार ऐसे कृत्रिम साधनों का प्रचार बेधड़क होने लग गया कि फिर इस अत्यन्त हीन ज्ञान को रोकने का एक भी उपाय नहीं रह जाता है और उसके प्रचार को रोकने की किसी में भी शक्ति नहीं रहेगी। और ये बातें सबसे पहले प्रजा के युवाओं में पहुँचती हैं। फ्रान्स के वेश्या-गृहों में कोमल उम्र की कुँवारी और विवाहिता अभागिनी स्त्रियों के यौवन के क्रय-विक्रय की दूकानें लग गई हैं।

जज लिंडसे ने अपने देश के युवा अपराधियों के जवानी

प्राप्त होने वाले बयानों का उलटा अर्थ लगाया है, अपनी पुस्तक में इन कृत्रिम-साधनों की सिफ़ारिश करके उन्होंने तमाम प्रजा को उलटी राह में लगा दिया है।

परन्तु उनकी ही पुस्तक में उनके दिये गये प्रमाणों का रहस्य उनको क्यों नहीं सूझा होगा ? वर्जिनिया एलिस नामक एक स्त्री का पत्र उन न्यायाधीश महाशय ने अपनी किताब में दिया है। यह बेचारी लिखती है कि मैं चार होशियार डाक्टरों से मिल चुकी हूँ, मेरा पति दूसरे दो डाक्टरों से सलाह ले आये हैं, इन छहों डाक्टरों ने सलाह दी है कि कृत्रिम उपायों को काम में लाने से कुछ समय तक के लिए तन्दुरुस्ती पर चाहे कुछ असर न दिखाई पड़े, परन्तु थोड़े ही वक्त के बाद स्त्री-पुरुष दोनों ही हाथ मलते हैं, कई मर्तबा अपेन्डिसाइटीस (पेट की एक बीमारी) के जैसे ऑपरेशन इस अनिष्ट से पैदा होने वाले कारणों का ही नतीजा है। क्या ये डाक्टर झूठे हैं ? ऐसा कहने में उनको कोई लाभ नहीं है। उलटे कृत्रिम साधनों का उपयोग करने का रोग बढ़ता है उनकी रोजी ठीक चल सकती है परन्तु ये डाक्टर अनुभवी और लोक-हित के जानने-वाले थे।

"जज लिंडसे और उसके अनुयायी उन कृत्रिम-साधन प्रचार में बुरी तरह से गिरे हैं। यदि यह अत्याचार बढ़ता गया तो देश में हजारों नीम-हकीम इन साधनों को लेकर फिरते और देश को अत्यन्त नुकसान पहुँचायेंगे।

"जज लिंडसे ने स्वयं प्रजोत्पत्ति रोकने वाले साधनों का

प्रचारक मण्डल स्थापित किया है और उसे सतयुग के उदय करने वाली एक संस्था के तौर पर वर्णन करते हैं। सतयुग तो दूर रहा, परन्तु भयंकर कलियुग उससे पैदा होगा इस विषय में ज़रा भी सन्देह नहीं है। जन-साधारण में इन साधनों का प्रचार हुआ कि लोग बुरी तरह से मरेंगे, दुःखी हो-हो करके मरेंगे। सम्भव है इस प्रकार सत्यानाश होगा तभी कहीं भावी प्रजा इन साधनों से महामारी की तरह दूर भागना सीखेगी।

जज लिंडसे की नीयत बुरी नहीं है। उसका तो उद्देश्य यह है कि प्रत्येक कुटुम्ब में बच्चों का बढ़ना रुक जायगा। स्त्री की इच्छा के माफ़िक़ ही बच्चे पैदा हों और जितने बच्चे आसानी से पुरुष पालन कर सकें, उतने हों—उनका यही उद्देश्य है। स्त्रियों में विषयेच्छा की जो स्वाभाविक इच्छा है उसे तृप्त करने का योग्य साधन उनके सामने रक्खा जाय। इस बात का पिशाच—भूत कोर्ट में आने वाली निर्लज्ज लड़कियों ने उस जज के सिर पर सवार किया है। मेरा तो यह विचार है कि उसकी अदालत में आनेवाली लड़कियों के जैसी गवाही देनेवाली लड़कियाँ अपवाद रूप ही समझी जा सकती हैं। दूसरी कई एक लड़कियों को मैं मिला हूँ, वे विषयेच्छा की बातों को जज लिंडसे के समक्ष बयान देने वाली लड़कियों के समान कवित्व और तत्वज्ञान का मुलम्मा चढ़ा कर भी नहीं कर सकतीं। कई एक समझदार लड़कियाँ और माताएँ जानती हैं कि यह इच्छा केवल भ्रम है।

परन्तु जज साहब के समीप ऐसी कई एक नासमझ लड़कियाँ

कई वर्षों से आती हैं, इसी से उनके जैसा विवाहित तथा बड़ी उम्र के विद्वान पुरुष ने भी उलटी राह ली और इच्छा न होने पर बालक न हों ऐसे साधनों की पुस्तक लिख डाली, नहीं तो ऐसा कौन होगा कि जो इतना ज्ञान होने पर भी पथ भूल करके कालेज के विद्यार्थियों को आनन्दपूर्वक सहचर सुख भोगने को कहे और उसके लिए क़ानून बनाने की हल-चल मचाये ? यदि उनका ज्ञान ठिकाने होता तो उन्हें मालूम हो सकता था कि कई एक सुन्दर, तेजस्वी जवानों को वे इस पाप से आत्मइत्या करना सिखाते हैं; क्योंकि उनका पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है और साथ ही साथ जीवनेच्छा भी नष्ट हो जाती है। यदि जज लिंडसे को इस बात की खबर होती कि जवानी में विषयेन्द्रिय को भड़काने से युवा लोग शराबी, चोर, लुटेरे और निठल्ले बन जाते हैं, यदि जज लिंडसे की बुद्धि पर पत्थर न पड़ा होता तो क्या वे यह लिखते कि पुरुष की विषयेच्छा तृप्त करने का और उसकी वेश्या बनने का स्त्री का धर्म है ?

एक ही मार्ग है—इन अक्ल के दुश्मनों को कौन समझावे कि प्रजा में जन्म मृत्यु की जो विशेषता दिखाई पड़ती है उसे रोकने का सिर्फ़ एक ही मार्ग है ? और वह है विषय-भोग से निवृत्ति। इन लोगों की आँखें यह क्यों नहीं देख सकतीं कि पशुओं में भी यही उपाय श्रेष्ठ है ? ये लोग क्यों नहीं समझते कि इन कृत्रिम साधनों से स्त्रियाँ वेश्याएँ और कुपथ-गामिनी बनती हैं और पुरुष नपुंसक-हिजड़े बनते हैं ?

आरोग्य के लिए विषय-भोग की आवश्यकता है, इस भ्रम को दूर करना प्रत्येक डाक्टर और अनुभवी सलाहकार का कर्तव्य है। मैं अपने अनुभव और अनेक डाक्टरों से सलाह के बाद कहता हूँ कि कई वर्षों तक विषय-भोग न करने से कुछ हानि नहीं होती, परन्तु बराबर लाभ होता है। कई एक युवाओं में उछलता हुआ उत्साह और प्रकाशमान तेज दिखाई पड़ता है, यह उनके विषय-भोग का नहीं, किन्तु उनके संयम का फल है। हर एक पुरुषार्थी मनुष्य समझे-समझे इस सूत्र का पालन करें। विषय की कामना तृप्त करने में खर्च की जानेवाली शक्ति पुरुषार्थ-सिद्धि में आसानी से लगाई जा सकती है, जितना अधिक शक्ति का संयम होगा उतनी ही अधिक सिद्धि होगी।

मनुष्य कई सदियों से कीमिया की तलाश में भटकते हैं। इस सूत्र में जो कीमिया भरा है वैसा और कहाँ मिलेगा?

और उस कर्तव्य के उपहार में उन्हें पारितोषिक दिया जाना चाहिये। स्त्रियों के लिये खास सुविधायें कर देना चाहिये।

"जैसे पुरुष विषयेच्छा को पुरुषार्थेच्छा में बदल देता है अथवा कर्मशीलता में भूल जाता है, वैसे ही स्त्री भी कर सकती है। महान् आदर्शों को सामने रख कर, अपने यौवन धन, अपने सौंदर्य और अपनी तमाम आकर्षण-शक्ति को लेकर एक अबला भारी से भारी पुरुषार्थ साध सकती है। सबसे ऊँचा आदर्श इतिहास में जोन आफ् आर्क का है। उसमें उसके निष्कलंक कौमार्य, तथा उसका निर्मल ब्रह्मचर्य के सिवा दूसरा कौन-सा बल था? फ्रान्स में १५ वीं सदी में कैसी भयंकर स्थिति फैली हुई थी! दारिद्र्य, दुःख और दुष्टता का हर ओर साम्राज्य था। फरांसीसी सेना अंग्रेजी सेना से वर्षों से हार खा रही थी। सैनिक निस्सत्व और निर्वीर्य थे। फ्रान्स में मुर्दे ढेरों में सड़ते थे, राजा भाग निकला था, स्त्रियों में सतीत्व जैसी कोई वस्तु बाक़ी नहीं रही थी। ऐसे मौक़े पर जोन आफ् आर्क नामक अशिक्षिता किन्तु अत्यन्त वीर और बुद्धिमती कुमारिका आगे आई। लोग नहीं मानते थे कि वह पवित्र होगी। वे ख़याल करते थे कि वह भी फ्रान्स की हजारों कन्याओं जैसी होगी। सोलह वर्ष की लड़की क्या अखण्ड कौमार्यवती रह सकती है?

उसके कौमार्य की जाँच करने को एक कमीशन बिठाया गया। उस कन्या का दावा सिद्ध हुआ। बुद्धिमान मनुष्यों ने उसको चाँदी का बख्तर पहनाया और उसे लश्कर की सेना नेत्री

बनाया, माना उस लड़की ने बिजली फूंक दी हो, इस प्रकार मृत्यु का भय छोड़ कर उसकी सेना लड़ी। उसके ब्रह्मचर्य का लोगों पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा, नामर्दों में पुरुषत्व आया और कई वर्षों से होने वाली लड़ाई का अन्त इने-गिने दिनों में हो गया तथा अंग्रेजों के पैर फ्रान्स से निकल गये। इतिहास में कुमारिका जोन अद्वितीय है। परन्तु आज जो प्रवाह बह रहा है, उस प्रकार यदि स्त्री विषय का पात्र बन जाय; पुरुष उसे इसी प्रकार भ्रष्ट करते रहें, और इसी प्रकार प्रजोत्पत्ति रोकनेवाले कृत्रिम साधनों का सर्वत्र प्रचार होता रहा तो सत्यनाश अवश्यम्भावी है। उस सत्यानाश के दूर करने के लिए फिर पीछे जोन आफ् आर्क की तरह किसी ब्रह्मचारिणी तपस्विनी की आवश्यकता होगी।

यह मैं मानता हूँ कि सभी स्त्रियाँ जोन ऑफ आर्क नहीं हो सकतीं, ऐसी दशा में चाहे वह पवित्र विवाह-सम्बन्ध में जुड़ जायँ परन्तु फिर भी वे अपने इस वैवाहिक जीवन की पवित्रता क़ायम रक्खें उसे विलासिता का जीवन न बना डालें। उनका कर्तव्य है कि वे माता का धर्म समझें, तथा पुरुषों के पुरुषार्थ को उत्साहित करने वाली बनें।"

उपसंहार—यह इस सुन्दर पुस्तक का सार है। पहली पुस्तक का सार क़रीब क़रीब शब्दशः भाषान्तर नहीं है, परन्तु लेखक के भावों का सारांश है। सारी पुस्तक में कहा गया विषय मानों ...ट कर इस महामंत्र में आ जाता है—'मरणं बिन्दु पातेन जीवनं ...रणात्' और जोन ऑफ आर्क के ज्वलंत दृष्टान्त जैसे

उदाहरण हमारे यहाँ वैधव्य को अखण्ड ब्रह्मचर्य से शोभित करने वाली मीराबाई, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और अहल्याबाई होलकर में और सारे जीवन को कौमार्य-ब्रह्मचर्य से शोभा देने वाली दक्षिण-हिन्द की साध्वियों अव्वै और अंडाल में मिलते रहते हैं।

नव दम्पति के प्रति

[श्री जमनालाल बजाज की पुत्री, बहन कमलाबाई का विवाह संस्कार सत्याग्रह-आश्रम में किया गया था। रूढ़ियों और परम्परा में अधिक जकड़ी हुई मारवाड़ी क़ौम के अग्रगण्य नेता श्री जमनालाल जी ने परम्परा का त्याग करके बड़ी सादगी के साथ, किसी भी प्रकार के आडम्बर के बिना, भोजनादिक के बड़े भारी खर्च के बिना, यह संस्कार होने दिया, इसलिये श्री जमनालाल जी और उनके समधी श्री केशवदेव जी धन्यवाद के पात्र हैं। इस अवसर पर श्री गान्धी जी ने वर-वधू को जो आशीर्वाद दिया उसमें विवाह का महत्व स्पष्ट समझाया गया है और इस आदर्श विवाह के सम्बन्ध में उनके उद्गार प्रत्येक हिन्दू के लिये विचारणीय हैं।]

आप लोग भाई और बहनें, दोनों जो बाहर से परिश्रम उठाकर रामेश्वर प्रसाद और कमला इन दोनों को आशीर्वाद देने को आये हो, इससे मुझे आनन्द होता है और मैं आपको धन्यवाद भी देता हूँ। धन्यवाद देने का सबब यह है कि इसको आप सामान्य विवाह नहीं समझते। हिन्दू-जाति में जो विवाह होता है

उसमें बहुत आडम्बर होता है। रङ्ग-राग, नाच-तमाशा, खाना-पीना अनेक प्रकार का प्रलोभन होता है। विवाह का धार्मिक अंश जिसके कारण विवाह करना योग्य समझा गया है वह छिप जाता है, हम धार्मिक अंश को भूल जाते हैं।

विवाह में पैसे का व्यय इतना अधिक होता है, कि ग़रीबों का विवाह करना आपत्ति-सी हो जाती है। कई लोग कर्ज़दार हो जाते हैं, और उस कर्ज़ से जन्म भर में भी उनके लिये छूट जाना मुश्किल हो जाता है। ऐसे विवाह से वर और कन्या दोनों गृहस्थाश्रम-धर्म का विधिवत् पालन करें, यह आकाश-पुष्पवत् हो जाता है। जिस विवाह में इतना आडम्बर होता है और जो विवाह-विधि इतनी विकार-मय होती है, और जिसे विकार-मय बनाने के लिये माता-पिता इतना परिश्रम उठाते हैं उससे वर और कन्या संयम-मय जीवन व्यतीत करें यह मुश्किल बात हो जाती है। यद्यपि इस आश्रम का आदर्श यह है कि विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और उसी प्रकार कुछ लोग रहते भी हैं; बालक और बालिकाओं को ब्रह्मचर्य की शिक्षा और पदार्थ-पाठ दिये भी जाते हैं। ऐसा होते हुए भी आश्रम के नज़दीक और उसकी छाया में विवाह किया जाता है, इसका कारण क्या? इसको धर्म-संकट माना जाय।

अहिंसा का पालन करने वाले किसी पर बलात्कार नहीं। आश्रमवासियों में से जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते लिये विवाह करना कर्त्तव्य ही है। और इस कर्त्तव्य के करने

में हम उनको आशीर्वाद क्यों न दें ? और विधि भी अच्छी क्यों न चलावें ? यह भी कर्त्तव्य है, और उसके पालन करते हुये और सोचते हुये मैंने यह देखा है, हिन्दुस्तान में अथवा सारे संसार में जहाँ विवाह में धार्मिक-विधि मानी जाती है, वहाँ उसमें संयम का अंश होता है। विवाह स्वेच्छाचार के लिये नहीं है। स्मृतियों में भी लिखा है कि जो दम्पति नियम से रहते हैं वे भी ब्रह्मचर्य का का पालन करते हैं। मैंने भी इसको बहुत समय तक नहीं समझा था। पर बहुत विचार करने के बाद मैं समझ सका। जो अपने विकारों का नाश नहीं कर सकते वे मर्यादा में रह कर विकारों पर अंकुश रखते हुए अनिवार्य इतना ही व्यवहार कर सकते हैं। वे भी संयमी कहलाते हैं।

जमनालाल जी का और मेरा जो सम्बन्ध है वह तो आप खूब जानते ही हैं। हम दोनों में यह निश्चय हुआ कि जितनी सादगी से और कम खर्च से विवाह कर सकें करना चाहिये, जिससे दोनों (वर-वधुओं) पर ऐसा प्रभाव पड़े। इस तरह से विवाह की क्रिया करनी चाहिये कि वे विवाह का सच्चा अर्थ समझ सकें। विवाह को आडम्बर-रहित बनाना, भोजनादि और गान-तान को स्थान नहीं देना, ऐसा अच्छी तरह से कहाँ हो सकता है ? अगर बम्बई में किया जाय तो मारवाड़ी समाज को और जमनालाल जी के मित्रों को इससे शिक्षा मिलेगी। आज कल सुधारों के नाम से जो अधर्म चल रहा है, वह नष्ट हो जावेगा। जो धर्म समझना चाहें उनके लिये दृष्टान्त हो जावेगा। परन्तु मुझे यह भय था कि

उसमें बहुत आडम्बर होता है। रङ्ग-राग, नाच-तमाशा, खाना-पीना अनेक प्रकार का प्रलोभन होता है। विवाह का धार्मिक अंश जिसके कारण विवाह करना योग्य समझा गया है यह छिप जाता है, हम धार्मिक अंश को भूल जाते हैं।

विवाह में पैसे का व्यय इतना अधिक होता है, कि ग़रीबों को विवाह करना आपत्ति-सी हो जाती है। कई लोग कर्ज़दार हो जाते हैं, और उस कर्ज़ से जन्म भर में भी उनके लिये छूट जाना मुश्किल हो जाता है। ऐसे विवाह से वर और कन्या दोनों गृहस्थाश्रम-धर्म का विधिवत् पालन करें, यह आकाश-पुष्पवत् हो जाता है। जिस विवाह में इतना आडम्बर होता है और जो विवाह-विधि इतनी विकार-मय होती है, और जिसे विकार-मय बनाने के लिये माता-पिता इतना परिश्रम उठाते हैं उससे वर और कन्या संयम-मय जीवन व्यतीत करें यह मुश्किल बात हो जाती है। यद्यपि इस आश्रम का आदर्श यह है कि विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और उसी प्रकार कुछ लोग रहते भी हैं; बालक और बालिकाओं को ब्रह्मचर्य की शिक्षा और पदार्थ-पाठ दिये भी जाते हैं। ऐसा होते हुए भी आश्रम के नज़दीक और उसकी छाया में विवाह किया जाता है, इसका कारण क्या? इसको धर्म-संकट माना जाय।

अहिंसा का पालन करने वाले किसी पर बलात्कार नहीं करते। आश्रमवासियों में से जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते उनके लिये विवाह करना कर्तव्य ही है। और इस कर्तव्य के करने

रुपये देते हैं, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिये हम दोनों ने सोचा कि बिलकुल सादगी से विवाह किया जाय। इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों हैं। जमनालाल जी और केशवदेव जी का, रामेश्वर प्रसाद और कमला का भला सोचना यह स्वार्थ है और दूसरों को मार्ग बताना यह परमार्थ। आप देखेंगे कि इस विवाह में आडम्बर नहीं होगा, नाच-गान नहीं होगा, विवाह के समय केवल धार्मिक-विधियाँ ही की जायँगी। आप लोगों को निमन्त्रण इस भाव से दिया गया है कि आप इसके साक्षी हों और इससे आप सम्मत हों और ऐसी प्रतिज्ञा करें कि आप इसका अनुकरण करेंगे। संभव है कि इसमें मेरी भूल हो और आप ऐसा करना पसन्द न करें। हिन्दुस्तान में चन्द धनिक लोग होने से वह धनिकों का देश नहीं हो जाता। यह कङ्गालों का मुल्क है। यहाँ पर जितने लोग भूख से मरते हैं और समय पर अन्न न मिलने से व्याधि-ग्रस्त हो जाते हैं और भूख से जड़वत् बन जाते हैं, उतने दुनियाँ के और किसी देश में नहीं। यह मेरा कहना नहीं है मगर इतिहास-कारों का कथन है—हिन्दू-मुसलमान इतिहास-कारों का नहीं,—राज्यकर्ता के क़ौम के लोगों का कथन है। ऐसे कङ्गाल मुल्क के करोड़पतियों को भी ऐसा काम करने का अधिकार नहीं है, जिससे कङ्गालों के पेट में दर्द हो। धनिक लोग हिन्दुस्तान में ही धन कमाते हैं। वे बाहर से धन कमाकर धनवान नहीं होते। यों तो बाहर के लोगों को दुःख देकर धन कमाना महा पाप है।

जितने करोड़पति या लखपति हिन्दुस्तान में हैं वे कङ्गालों

जितनी सादगी के साथ यहाँ विवाह हो सकता है उतनी सादगी के साथ वहाँ नहीं हो सकता। इसकी दलीलों में मैं उतरना नहीं चाहता। इसी कारण से मैंने वर्धा को भी छोड़ दिया और बम्बई को भी छोड़ दिया। परन्तु इस कार्य को कैसे किया जाय? जमना लालजी और उनके माता-पिता की सम्मति से ही काम नहीं चल सकता था। रामेश्वर प्रसाद के वडीलवर्ग की भी सम्मति की जरूरत थी। प्रभु का अनुग्रह था कि केशव देव जी ने भी इसे स्वीकार कर लिया। मारवाड़ी समाज में धन बहुत है और खर्च भी अधिक होता है। इतना अधिक कि गरीबों को विवाह करना अशक्य-सा हो जाता है? और उनपर बोझ पड़ता है। विवाहों में फुलवाड़ी, भोजन, बत्तिया और नायिकाओं का नाच होता है। मैं नहीं जानता कि मारवाड़ी लोगों में नाच होता है या नहीं, परन्तु गुजरात के धनिक लोगों में तो कहीं-कहीं होता है। इसका असर सारे मारवाड़ी समाज पर, और मारवाड़ी समाज हिन्दू जाति का एक अंश है इसलिये उस पर भी, इतना ही नहीं बल्कि मुसलमान इत्यादि जातियों पर थोड़ा पड़ता है। हाँ, मैं मानता हूँ कि उन अन्य जातियों पर, थोड़ा पड़ता है। इससे आप सोच सकते हैं कि धनिक लोगों पर कितना बोझ है। परन्तु जो धनवान लोग धन कमाने में मस्त हैं और अहंकार में ईश्वर को भूल गये हैं, उनकी बात दूसरी है।

मारवाड़ी लोगों में धन है। दुराचार होते हुये भी धर्म में प्रेम है। यह बात मैं खूब जानता हूँ। प्रति वर्ष धर्म के लिये लाखों

रुपये देते हैं, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिये हम दोनों ने सोचा कि बिलकुल सादगी से विवाह किया जाय। इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों हैं। जमनालाल जी और केशवदेव जी का, रामेश्वर प्रसाद और कमला का भला सोचना यह स्वार्थ है और दूसरों को मार्ग बताना यह परमार्थ। आप देखेंगे कि इस विवाह में आडम्बर नहीं होगा, नाच-गान नहीं होगा, विवाह के समय केवल धार्मिक-विधियाँ ही की जायँगी। आप लोगों को निमन्त्रण इस भाव से दिया गया है कि आप इसके साक्षी हो और इससे आप सम्मत हो और ऐसी प्रतिज्ञा करें कि आप इसका अनुकरण करेंगे। संभव है कि इसमें मेरी भूल हो और आप ऐसा करना पसन्द न करें। हिन्दुस्तान में चन्द धनिक लोग होने से यह धनिकों का देश नहीं हो जाता। यह कङ्गालों का मुल्क है। यहाँ पर जितने लोग भूख से मरते हैं और समय पर अन्न न मिलने से व्याधि-ग्रस्त हो जाते हैं और भूख से जड़वत् बन जाते हैं, उतने दुनियाँ के और किसी देश में नहीं। यह मेरा कहना नहीं है मगर इतिहास-कारों का कथन है—हिन्दू-मुसलमान इतिहास-कारों का नहीं,—राज्यकर्ता के क़ौम के लोगों का कथन है। ऐसे कङ्गाल मुल्क के करोड़पतियों को भी ऐसा काम करने का अधिकार नहीं है, जिससे कङ्गालों के पेट में दर्द हो। धनिक लोग हिन्दुस्तान में ही धन कमाते हैं। वे बाहर से धन कमाकर धनवान नहीं होते। यों तो बाहर के लोगों को दुःख देकर धन कमाना महा पाप है।

जितने करोड़पति या लखपति हिन्दुस्तान में हैं वे कङ्गालों

जितनी सादगी के साथ यहाँ विवाह हो सकता है उतनी सादगी के साथ वहाँ नहीं हो सकता। इसकी दलीलों में मैं उतरना नहीं चाहता। इसी कारण से मैंने वर्धा को भी छोड़ दिया और बम्बई को भी छोड़ दिया। परन्तु इस कार्य को कैसे किया जाय? जमना लालजी और उनके माता-पिता की सम्मति से ही काम नहीं चल सकता था। रामेश्वर प्रसाद के वडीलवर्ग की भी सम्मति की जरूरत थी। प्रभु का अनुग्रह था कि केशव देव जी ने भी इसे स्वीकार कर लिया। मारवाड़ी समाज में धन बहुत है और खर्च भी अधिक होता है। इतना अधिक कि गरीबों को विवाह करना अशक्य-सा हो जाता है? और उनपर बोझ पड़ता है। विवाहों में फुलवाड़ी, भोजन, बर्तिया और नायिकाओं का नाच होता है। मैं नहीं जानता कि मारवाड़ी लोगों में नाच होता है या नहीं, परन्तु गुजरात के धनिक लोगों में तो कहीं-कहीं होता है। इसका असर सारे मारवाड़ी समाज पर, और मारवाड़ी समाज हिन्दू जाति का एक अंश है इसलिये उस पर भी, इतना ही नहीं बल्कि मुसलमान इत्यादि जातियों पर थोड़ा पड़ता है। हाँ, मैं मानता हूँ कि इन अन्य जातियों पर, थोड़ा पड़ता है। इससे आप सोच सकते हैं कि धनिक लोगों पर कितना बोझ है। परन्तु जो धनवान लोग धन कमाने में मस्त हैं और अहंकार में ईश्वर को भूल गये हैं, उनकी बात दूसरी है।

मारवाड़ी लोगों में धन है। दुराचार होते हुये भी है। यह बात मैं खूब जानता हूँ। प्रति वर

ऐसा मैं जानता हूँ। दोनों समझते हैं, रामेश्वर प्रसाद समझता ही है और कमला भी इस उमर की हो गई है कि उसके माँ-बाप उसको मित्र जैसी समझ सकते हैं। इन दोनों को समझना चाहिये कि इनके माता-पिता जो इतना परिश्रम कर रहे हैं, और जो इतने लोग साक्षी बनने के लिये यहाँ आ गये हैं, यह विवाह स्वच्छन्द बनने के लिये नहीं, विकार का गुलाम बनने के लिये नहीं। यह दम्पति आदर्श दम्पति बने, उनके ऊँचे भाव बढ़ाने के लिये ही यह सब कर रहे हैं।

गृहस्थाश्रम में भी विकार को दबाने का मौका है। शास्त्र तो यह कहता है कि केवल प्रजा की इच्छा होने पर ही विकार वश में किए जा सकते हैं। इसको हम भूल गये हैं और हमको यह बात कोई बतलाता नहीं। रामेश्वर प्रसाद को यह बात मैं बतलाना चाहता हूँ कि स्त्री-पुरुष की गुलाम नहीं है। वह अर्धांगिनी है, सह-धर्मिणी है; उसको मित्र समझना चाहिये। रामेश्वर प्रसाद स्वप्न में भी कमला को गुलाम न समझे। हिन्दू धर्म में भी अभी ऐसे लोग हैं जो स्त्री को अपना माल समझते हैं।

ये दोनों नये जीवन में प्रवेश करते हैं, मैंने एक बार कहा है, यह तो एक नया जन्म है। यह दम्पति शिव-पार्वती या सावित्री-सत्यवान या सीता-राम के समान आदर्श भूत हों। हिन्दू-धर्म ने स्त्रियों को इतना उच्च स्थान दिया है कि हम सीताराम कहते हैं, राम-सीता नहीं, राधा-कृष्ण कहते हैं कृष्ण-राधा नहीं। अगर सीता नहीं तो राम को कोई नहीं जानता। अगर सावित्री नहीं तो

को और भी कङ्गाल बनाते हैं। हिन्दुस्तान में लाख लाख देहात हैं, उनमें कई का नाश हो रहा है, उनका ख़ून चूसा जा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि जिनको एक समय भी खाने को नहीं मिलता है वे लोग मर जाते हैं। इस देश में पशु और मनुष्य दोनों मरते हैं। ऐसी हालत में इतना ही धन ख़र्च करना जो धर्म के लिये अनिवार्य हो और बचा हुआ धन परोपकार में व्यय करें, जिससे हिन्दुस्तान के कङ्गालों का भी भला हो और धनियों का भी भला हो। इस दृष्टि से हम देखें तो यह विवाह अनुकरणीय है, यह एक सामान्य सुधार नहीं है। इसकी जड़ ख़ूब भीतर जाती है। इसका परिणाम भी अच्छा ही होगा। इस तरह का कार्य अगर ग़रीब करेगा तो भी उसका काम तो होगा ही, पर इतना प्रभाव नहीं पड़ेगा। जमनालाल जी दस हज़ार, बीस हज़ार और पचास हज़ार भी फेंक दे सकते हैं और उनके मारवाड़ी भाई भी कहेंगे कि यह कैसा अच्छा विवाह किया; परन्तु उन्होंने धन होते हुए भी उसका उपयोग नहीं किया, अपने अधिकार को छोड़ दिया। इसका परिणाम अच्छा ही होगा। कारण गीता जी में भी लिखा है कि श्रेष्ठ लोग जो करते हैं उनका अनुकरण दूसरे लोग करते हैं। यह सच्चा और अनुभव-सिद्ध वाक्य है। मैंने आपका अनुग्रह माना है, और मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आप कमला और रामेश्वर प्रसाद दोनों को आशीर्वाद देंगे। दूसरे भी ऐसा करेंगे तो अच्छी बात होगी। ऐसा करने से स्वतः की, मुल्क की और धर्म की सेवा होगी। रामेश्वर प्रसाद और कमला दोनों यहाँ पर हैं,

ऐसा मैं मानता हूँ। दोनों समझते हैं, रामेश्वर प्रसाद समझता ही है और कमला भी इस उमर की हो गई है कि उसके माँ-बाप उसको मित्र जैसी समझ सकते हैं। इन दोनों को समझना चाहिये कि इनके माता-पिता जो इतना परिश्रम कर रहे हैं, और जो इतने लोग साक्षी बनने के लिये यहाँ आ गये हैं, यह विवाह स्वच्छन्द बनने के लिये नहीं, विकार का गुलाम बनने के लिये नहीं। यह दम्पति आदर्श दम्पति बने, उनके ऊँचे भाव बढ़ाने के लिये ही यह सब कर रहे हैं।

गृहस्थाश्रम में भी विकार को दबाने का मौका है। शास्त्र तो यह कहता है कि केवल प्रजा की इच्छा होने पर ही विकार वश में किए जा सकते हैं। इसको हम भूल गये हैं और हमको यह बात कोई बतलाता नहीं। रामेश्वर प्रसाद को यह बात मैं बतलाना चाहता हूँ कि स्त्री-पुरुष की गुलाम नहीं है। वह अर्धांगिनी है, सह-धर्मिणी है; उसको मित्र समझना चाहिये। रामेश्वर प्रसाद स्वप्न में भी कमला को गुलाम न समझे। हिन्दू धर्म में भी अभी ऐसे लोग हैं जो स्त्री को अपना माल समझते हैं।

ये दोनों नये जीवन में प्रवेश करते हैं, मैंने एक बार कहा है, यह तो एक नया जन्म है। यह दम्पति शिव-पार्वती या सावित्री-सत्यवान या सीता-राम के समान आदर्श भूत हों। हिन्दू-धर्म ने स्त्रियों को इतना उच्च स्थान दिया है कि हम सीताराम कहते हैं, राम-सीता नहीं, राधा-कृष्ण कहते हैं कृष्ण-राधा नहीं। अगर सीता नहीं तो राम को कोई नहीं जानता। अगर सावित्री नहीं तो

सत्यवान् का नाम भी कहीं सुनाई न देता। अगर द्रौपदी न होती तो पाण्डवों का पता भी न चलता। दृष्टान्त खोजने की जरूरत नहीं है। मेरा विश्वास है कि यह कार्य हमको परिणाम कारक होगा। मुझको ऐसा सोचने का मौका नहीं आने पावे कि मैंने कैसा अकार्य किया। अभी मेरे आयुष्य के शेष दिन रहे हैं, उसमें मैं ईश्वर से डर कर चलना चाहता हूँ। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि यह दम्पति हमारे लिये आदर्श होगी हमको पश्चात्ताप का कोई मौका नहीं देगी। अन्त में मैं इन दोनों को आशीर्वाद देता हूँ कि ये दोनों दीर्घायु हों। और अपने वड़िलों को सुशोभित करें और धर्म की रक्षा तथा देश की सेवा करें।

काम रोग का निवारण

थर्स्टन नामक लेखक की नयी पुस्तक के मुख्य भाग का अनुवाद अन्यत्र दिया जा रहा है। हर एक स्त्री-पुरुष को उसका ध्यान पूर्वक मनन करना चाहिये। १५ वर्ष के बालक से लेकर ५० वर्ष तक के पुरुष में, और इसी उम्र की, या इससे भी छोटी बालिका से लेकर ५० वर्ष तक की स्त्री में यह कल्पना फैली हुई है कि विषय-भोग के बिना रहा ही नहीं जा सकता। इसलिए स्त्री और पुरुष दोनों ही उसके लिये विह्वल रहते हैं। स्त्री को देखकर पुरुष का मन हाथ से जाता रहता है, और पुरुष को देखकर स्त्री की भी वही दशा हो जाती है। इससे कितने ऐसे रिवाज भी पड़ गये हैं कि जिनसे स्त्री-पुरुष रोगी, निर्बल तथा निरुत्साही रहने में आते हैं और हमारा जीवन ऐसा घृणित तथा पतित हो जाता है कि जैसा मनुष्य के लिए उचित नहीं है। ऐसे वातावरण में लिखे गए शास्त्र में भी इसी प्रकार की भावनाएं देखने में आती

मान्यता के कारण और उसके आधार पर बनाये हुये रिवाजों के कारण या तो विषय-भोग में या उसके विचार में जीवन चला जाता है, या फिर संसार कड़वे जहर के समान हो जाता है।

वास्तविक रीति से मनुष्य में विवेक-बुद्धि होने से उसमें पशु की अपेक्षा अधिक त्याग-शक्ति और संयम होना चाहिये, किन्तु तो भी हम रोज ही यह अनुभव करते हैं कि पशु नर-मादा की मर्यादा का जिस अंश तक पालन करते हैं, उस अंश तक मनुष्य नहीं करता। सामान्य तौर पर स्त्री-पुरुष के बीच माता-पुत्र, बहिन-भाई या पुत्री-पिता के समान सम्बन्ध होना चाहिये। यह तो स्पष्ट ही है कि दम्पति-सम्बन्ध अपवाद रूप में ही हो सकता है। अगर भाई को बहिन से या बहिन को भाई से किसी प्रकार का डर हो सकता है तो प्रत्येक पुरुष को अन्य स्त्री से या प्रत्येक स्त्री को अन्य पुरुष से डर होना चाहिये। इसके विपरीत परिस्थिति यह है कि भाई बहिन के बीच भी संकोच रखा जाता है और रखना सिखलाया जाता है।

इस घृणित स्थिति से अर्थात् विषय-वासना के दुर्गन्धित वायु-मण्डल से निकल आने की पूरी आवश्यकता है। हममें ऐसे वहम ने जड़ जमा ली है कि इस वासना से उबरना असम्भव है। अब ऐसा दृढ़ विश्वास हम में उत्पन्न होना चाहिये कि इस वहम की जड़ ही उड़ा दी जाय; और यह शक्य भी है।

ऐसा पुरुषार्थ करने में थर्स्टन की यह छोटी-सी पुस्तक बहुत मदद देती है। इस पुस्तक के लेखक की यह खोज मुझे तो ठीक जान पड़ती है कि विषय-वासना के मूल में आज कल की विवाह

सम्बन्धी मान्यता और उसके आधार पर रचे गये रिवाज हैं, जो पूर्व-पश्चिम सर्वत्र ही व्याप्त हैं। स्त्री-पुरुष का रात में एकान्त में, एक कमरे में और एक बिस्तर पर सोना दोनों के लिये घातक है और विषय-वासना को व्यापक और स्थायी करने का प्रचंड उपाय है। जब कि एक ओर से सारा दंपति-संसार ऐसा व्यवहार करे और दूसरी ओर से धर्मोपदेशक और सुधारक संयम का उपदेश देवें तो यह आकाश में पैबंद लगाने के समान है। ऐसे वातावरण में संयम के उपदेश निरर्थक हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। शास्त्र पुकार-पुकार कर कहते हैं कि विषय-भोग केवल प्रजोत्पत्ति के लिये किया जा सकता है। इस आज्ञा का उल्लंघन पाया-जाता में होता है। इस प्रकार विषय-वासना के परिणाम स्वरूप यदि रोग होते हैं तो उनके दूसरे कारण ढूंढे जाते हैं। यह तो वैसी ही बात हुई कि बगल में लड़का और शहर में ढिंढोरा। अगर ऐसी स्वयं प्रकाशमान तथा साफ बातें भी समझ ली जायँ तो १—स्त्री पुरुष आज से प्रतिज्ञा करें कि हमें एकान्त में साथ-साथ सोना ही नहीं है और न दोनों की प्रबल इच्छा के बिना प्रजोत्पत्ति का कभी विचार भी करना है। जहाँ तक संभव हो दोनों को दो जुदा कमरों में सोना चाहिये। गरीबी के कारण, जहाँ यह नितान्त ही असंभव है, वहाँ स्त्री-पुरुष को दूर और अलग अलग बिस्तरों पर बीच में किसी मित्र या सगे को सुला कर सोना चाहिये। २—समझदार माँ-बाप अपनी लड़की को ऐसे घर में देने से साफ इनकार कर देवें, जहाँ कि लड़की को अपना कमरा और अपना

मान्यता के कारण और उसके आधार पर बनाये हुये रिवाजों के कारण या तो विषय-भोग में या उसके विचार में जीवन चला जाता है, या फिर संसार कड़वे ज़हर के समान हो जाता है।

वास्तविक रीति से मनुष्य में विवेक-बुद्धि होने से उसमें पशु की अपेक्षा अधिक त्याग-शक्ति और संयम होना चाहिये, किन्तु तो भी हम रोज़ ही यह अनुभव करते हैं कि पशु नर-मादा की मर्यादा का जिस अंश तक पालन करते हैं, उस अंश तक मनुष्य नहीं करता। सामान्य तौर पर स्त्री-पुरुष के बीच माता-पुत्र, बहिन-भाई या पुत्री-पिता के समान सम्बन्ध होना चाहिये। यह तो स्पष्ट ही है कि दम्पति-सम्बन्ध अपवाद रूप में ही हो सकता है। अगर भाई को बहिन से या बहिन को भाई से किसी प्रकार का डर हो सकता है तो प्रत्येक पुरुष को अन्य स्त्री से या प्रत्येक स्त्री को अन्य पुरुष से डर होना चाहिये। इसके विपरीत परिस्थिति यह है कि भाई बहिन के बीच भी संकोच रखा जाता है और रखना सिखलाया जाता है।

इस घृणित स्थिति से अर्थात् विषय-वासना के दुर्गन्धित वायु-मण्डल से निकल जाने की पूरी आवश्यकता है। हममें ऐसे वहम ने जड़ जमा ली है कि इस वासना से उबरना असम्भव है। अब ऐसा दृढ़ विश्वास हम में उत्पन्न होना चाहिये कि इस वहम की जड़ ही उड़ा दी जाय; और यह शक्य भी है।

ऐसा पुरुषार्थ करने में थर्स्टन की यह छोटी-सी पुस्तक बहुत मदद देती है। इस पुस्तक के लेखक की यह खोज मुझे तो ठीक जान पड़ती है कि विषय-वासना के मूल में आज कल की विवाह

सम्बन्धी मान्यता और उसके आधार पर रचे गये रिवाज हैं, जो पूर्व-पश्चिम सर्वत्र ही व्याप्त हैं। स्त्री-पुरुष का रात में एकान्त में, एक कमरे में और एक बिस्तर पर सोना दोनों के लिये घातक है और विषय-वासना को व्यापक और स्थायी करने का प्रचंड उपाय है। जब कि एक ओर से सारा दंपति-संसार ऐसा व्यवहार करे और दूसरी ओर से धर्मोपदेशक और सुधारक संयम का उपदेश देवें तो यह आकाश में पैबंद लगाने के समान है। ऐसे वातावरण में संयम के उपदेश निरर्थक हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। शास्त्र पुकार-पुकार कर कहते हैं कि विषय-भोग केवल प्रजोत्पत्ति के लिये किया जा सकता है। इस आज्ञा का उल्लंघन सदा-सर्वदा में होता है। इस प्रकार विषय-वासना के परिणाम स्वरूप यदि रोग होते हैं तो उनके दूसरे कारण ढूंढे जाते हैं। यह तो वैसी ही बात हुई कि बगल में लड़का और शहर में ढिंढोरा। अगर ऐसी स्वयं प्रकाशमान तथा साफ बातें भी समझ ली जायें तो १—स्त्री पुरुष आज से प्रतिज्ञा करें कि हमें एकान्त में साथ-साथ सोना ही नहीं है और न दोनों की प्रबल इच्छा के बिना प्रजोत्पत्ति का कभी विचार भी करना है। जहाँ तक संभव हो दोनों को दो जुदा कमरों में सोना चाहिये। गरीबी के कारण, जहाँ यह नितान्त ही असंभव है, वहाँ स्त्री-पुरुष को दूर और अलग अलग ...

विस्तार न मिल सके। विवाह एक तरह की मित्रता है। बालकों को ऐसा शिक्षण मिलना चाहिये कि स्त्री-पुरुष सुख-दुःख के साथी बनते हैं। किन्तु दंपति को विवाह होने के बाद पहली ही रात को विषय-भोग में पड़कर जिंदगी बरबाद करने का उपाय नहीं खोजना चाहिये।

थर्स्टन की इस खोज को क़बूल करने के पीछे जो नयी, आश्चर्य कारक, किन्तु कल्याण-कर, तथा शांति-प्रद कल्पना छिपी हुई है, उसीका मनन करना योग्य है। साथ ही इससे इन्हीं विचारों के अनुसार विवाह-संबंधी प्रचलित विचारों में भी फेर-फार होना चाहिये। ऐसा होने पर ही इस खोज का लाभ मिलेगा। इस खोज का जिन्होंने मनन किया हो वे अगर बाल-बच्चे वाले हों तो उनको चाहिये कि वे अपने लड़कों की तालीम और घर का वातावरण बदलें।

विषय-भोग भोगते हुए भी प्रजोत्पत्ति को निवारण करने के जिन कृत्रिम उपायों का भयंकर प्रचार आज कल हो रहा है, वह हानिकर है। इतनी-सी बात समझने के लिए थर्स्टन की साक्षी या उसके समर्थन की जरूरत नहीं होनी चाहिए। यही आश्चर्य की बात है कि ये उपाय हिन्दुस्तान में कैसे चल सकते हैं। यह बात अक्ल में नहीं समाती है कि शिक्षित आदमी हिन्दुस्तान के निर्मल वातावरण में किस तरह ऐसे उपायों को काम में लाने की सलाह देते हैं।

काम कैसे जीता जाय

काम-विकार जीतने का प्रयत्न करने वाले एक पाठक लिखते हैं।

आपकी 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा' की पुस्तक भाग पहला—पढ़ी, जिससे ज़्यादा अनुभव प्राप्त हुआ। आपने कोई भी बात छिपाई नहीं है, इस कारण मैं भी कोई बात छिपा रखना ठीक नहीं समझता। 'अनीति की राह पर' पुस्तक भी पढ़ी, उससे भी विषयों के जीतने के विशेष उपाय का पता चला। लेकिन विषय-वासना इतनी खराब है कि योग वासिष्ठ, स्वामी रामतीर्थ के ग्रंथ और स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों को पढ़ते समय तो सब कुछ निस्सार मालूम होने लगता है। परन्तु पढ़ना खतम होते ही विषय के घोड़े फिर से चढ़ दौड़ते हैं। आँख, नाक, कान, जीभ वगैरह वश में रखे जा सकते हैं, क्योंकि आँख बन्द की कि

की बन जाती है। मैं सात्विक-भोजन करता हूँ, एक बार खाता हूँ, रात को केवल दूध पी कर रहता हूँ, तिस पर भी काम विकार किसी तरह दबता नहीं, नेस्तो-नाबूद होता नहीं। क्यों, कुछ समझ में नहीं पड़ता। गीता जी में भी भगवान श्री कृष्ण जी ने एक जगह कहा है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥
॥ अ० २ श्लोक ५९॥

यह सच है कि निराहार रहने वाला देह-धारी जीव इन्द्रियं के विषय से निवृत्त होता है, लेकिन वह विषयों की आसक्ति से छुटकारा नहीं पाता। यह आसक्ति तो परमात्मा के दर्शन से ही छूटती है।

सारांश इस तरह ईश्वर का दर्शन हो, तभी विषयों की आसक्ति से पिण्ड छूटे। दूसरे शब्दों में न ईश्वर के दर्शन हों और न विषयों से मुक्ति मिले। यह कठिन समस्या है। अब मैं क्या करूँ? क्या आप मुझ जैसे विषयासक्त को कोई रास्ता नहीं बतायँगे?

इसमें शक नहीं कि ऐसी कठिनाइयों में मार्ग बतलाने वाले साधु पुरुष होंगे, लेकिन मैं उनसे किस तरह मिल सकता हूँ? क्योंकि आज कल भले और बुरे साधु की पहचान करना भी कठिन है।

इसका जवाब 'नवजीवन' के जरिये देंगे तो कोई अच्छा-सा रास्ता पकड़ सकूँगा और प्रभु को पाने में रुकावट डालने वाले विषय जीते जा सकेंगे।

पढ़ना पढ़ने से मैं ये सवाल आपसे पूछने की कोशिश में था। जब आपकी आत्म-कथा पढ़ी, तब मुझे मालूम हुआ कि ऐसे प्रश्न पूछना अनुचित नहीं होगा। साथ ही यह भी प्रतीत हुई कि ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का हल पूछने में शरमिन्दा होने की ज़रूरत नहीं है।

इन पाठकों की भांति और लोगों की भी यही हालत है। काम को जीतना कठिन है असम्भव या गैर-मुमकिन नहीं। लेकिन मनु का कथन है कि जो काम को जीत लेता है, वह संसार जीत लेता है और भवसागर से पार हो जाता है। मतलब, यह है कि काम पर जय पाना सबसे कठिन बात है। लेकिन काम-विजय की कोशिश करने वाले बहुत-से लोग यह स्वीकार नहीं करते कि ऐसी कठिन चीज़ को पाने के लिए धीरज की सख्त ज़रूरत रहती है। हम जानते हैं कि वर्णमाला का परिचय प्राप्त करने, अक्षर-ज्ञान पाने के लिए लगन, धीरज और ध्यान की कितनी आवश्यकता पड़ती है। इस पर से अगर हम त्रैराशिक का हिसाब लगा कर देखें तो हमें पता चले कि अक्षर-ज्ञान के अभ्यास में धीरज वगैरह की जितनी आवश्यकता होती है। काम-विजय के लिए उससे अनन्त गुना अधिक धैर्य की आवश्यकता होती है।

यह तो धीरज की बात हुई। काम-विजय के अनेक उपचारों के बारे में भी हम उतने ही उदासीन-बेफ़िक्र रहते हैं। साधारण बीमारी को दूर करने के लिए दुनिया भर की धूल छान डालते हैं; डॉक्टरों के घर जाते हैं; जन्तर-मन्तर तक नहीं छोड़ते, लेकिन

काम-रूप महा रोग को मिटाने के लिए जितने चाहिए उतने उपचार हम नहीं करते। कुछेक उपचार करके ही थक जाते हैं और उसके ईश्वर अथवा इलाज बताने वाले के साथ शर्त करते हैं कि इतनी चीज तो नहीं ही छोड़ेंगे, फिर भी काम-विकार को मिटाना होगा। तात्पर्य यह है कि काम-विकार को नष्ट करने की सच्ची विकलता हमें नहीं होती। उसके लिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिए हम तैयार नहीं होते। हमारी यह शिथिलता काम-विकार को जीतने के मार्ग में एक बड़ी-से-बड़ी रुकावट है। यह सच है कि निराहारी के विकार दबते हैं, लेकिन आत्म-दर्शन के बिना आसक्ति का नाश नहीं होता। लेकिन उक्त श्लोक का अर्थ यह नहीं है कि कामविजय के लिए निराहार बेकाम है। उसका अर्थ यह है कि निराहार रहते-रहते थकना ही नहीं हो सकता है कि इस तरह की दृढ़ता और लग्न से आत्म-दर्शन हो जायँ, साथ ही आसक्ति भी मिट जायगी। इस तरह का अनशन किसी दूसरे के कहने से नहीं किया जा सकता, न आडम्बर वाहरी दिखावट के खातिर ही मंजूर किया जा सकता है; इसके लिए मन, वचन और शरीर का संयोग जरूरी है। अगर यह सहयोग सध जाय तो ईश्वर की प्रसादी अवश्य ही मिले और प्रसादी मिले तो विकार की शांति तो मिली मिलाई ही है।

लेकिन निराहार-व्रत से पहले के कई हलके उपाय भी हैं। अगर विकार शान्त न हों तो कम-से-कम होंगे। अतः भोग-विलास के सारे अवसरों चाहिए। उनके प्रति अभाव बुद्धि जागृत

करनी चाहिए। क्योंकि प्रभाव-विहीन त्याग सिर्फ बाहरी त्याग होगा और इस कारण चिरस्थायी नहीं हो सकेगा। यहाँ यह बताने की जरूरत तो नहीं होनी चाहिये कि भोग-विलास किसे कहा जाय। जिन चीजों से विकार पैदा हों उनका त्याग करना चाहिये।

इस सिलसिले में आहार-भोजन का सवाल भी बहुत विचारणीय है। अभी यह क्षेत्र अछूता ही पड़ा है। मेरे विचार में विकारों को शान्त करने की इच्छा रखने वालों को घी-दूध का युक्त-न-युक्त उपयोग करना चाहिये। वनपक्व अनाज खाकर अगर जीवन-निर्वाह किया जा सके, तो कृत्रिम अग्नि के संसर्ग से तैयार की गई .खुराक न ले अथवा बहुत थोड़ी ले। फल और बहुत-सी हरी भाजी जो बिना रांधे भी खाई जा सकती है, खानी चाहिए। लेकिन कच्ची हरी भाजी की .खुराक का प्रमाण बहुत थोड़ा रखना चाहिए। दो-तीन तोला कच्ची हरी भाजी से काफी पोषण मिल जाता है। मिठाई, मसालों वगैरह का एक दम त्याग करना चाहिए। इतना बता चुकने पर भी मैं जानता हूँ कि सिर्फ .खुराक से ही ब्रह्मचर्य की पूरी रक्षा नहीं हो सकती। लेकिन विकारोत्तेजक .खुराक खाते हुए भी मनुष्य ब्रह्मचर्य पालन की आशा न रक्खे, न रखनी चाहिये।

वर्णित लाभों की हमें उम्मेद नहीं रखनी चाहिये, क्योंकि ये लाभ तो उसी को होंगे जिसने बचपन से संयत-जीवन बिताया होगा। और तीसरी कठिनाई जो पड़ती है वह यह है कि सभी प्रकार के कृत्रिम और बाहरी संयम के रहते हुए भी, हम अपना संयम करने, अपने विचारों को काबू में रखने में असमर्थ होते हैं। और पवित्र जीवन के सभी इच्छुक मुझसे यह बात सुन लेवें कि कभी-कभी बुरा विचार भी शरीर को उतना ही नष्ट करता है जितना कि बुरे काम। विचारों के ऊपर काबू करना बहुत दिनों के अभ्यास के कष्ट और परिश्रम के बाद ही आता है। मगर मेरा पक्का विश्वास है कि उस महान् फल की प्राप्ति के लिये कितना ही वक्त, कोई मिहनत, कोई कष्ट अधिक नहीं कहा जायगा। विचारों की पवित्रता तो तभी आ सकती है, जब प्रत्यक्ष अनुभव जैसा ईश्वर में विश्वास हो।

"स्वर्ग में पवित्रता की इतनी क़द्र है कि जब कोई सच्चा पवित्रात्मा पहुँचता है तो उसकी सेवा को हजारों देवदूत दौड़ते हैं।"

ब्रह्मचर्य का अर्थ है, स्वेच्छा पूर्वक, किसी तरह का विषयानन्द बिलकुल न करना, और उसकी शक्ति को जान बूझ कर उस पर पूरा कब्जा रखना। अगर आदमी का जीवन पवित्र और सङ्कल्प सबल न हो तो वह इन भोगों में पड़ ही नहीं जाता, बल्कि जरूर पड़ेगा ही।

पूर्ण ब्रह्मचर्य से यह लाभ होते हैं; स्नायु-मण्डल पवित्र होता है और सबल बनता है। विशेष इन्द्रियाँ-जैसे कि दृष्टि और श्रवण-

संयम का नियम

[डाक्टर कोवन की किताब, 'साइन्स आफ ए न्यू लाइफ' में-से कुछ उपयुक्त अंश एक मित्र ने भेजे हैं। मैंने किताब नहीं पढ़ी है, मगर उस अंश में दी गई सलाह जरूर ठीक है। मैंने उनमें-से भोजन के बारे में कुछ शब्द निकाल दिये हैं, जो हिन्दुस्तानी पाठकों के लिये बहुत-से काम के नहीं थे। शुद्ध, पवित्र, संयत-जीवन बिताने की इच्छा रखनेवाले यह न सोचे कि चूंकि इसका इष्ट फल तुरंत ही नहीं मिल जाता, इसलिये इसका प्रयत्न करना ही फिजूल है। और कोई दीर्घ काल के सफल ब्रह्मचर्य के बाद भी शारीरिक पूर्णता की आशा न रक्खें। ब्रह्मचर्य के लिये हम प्रयत्न-शील लोगों में-से अधिकांश आदमियों को तीन कठिनाइयाँ झेलनीं पड़ती हैं। अपने माता-पिताओं से हमें निर्बल मन और तन की विरासतें मिली है। और ग़लत तरीके के रहन-सहन से हमने अपने शरीर और संकल्प को निर्बल कर दिया है। जब पवित्रता का समर्थक कोई लेख हमारे मन पर चढ़ता है, तो हम सुधार शुरू करते हैं। ऐसा सुधार शुरू करने का समय कभी हाथ से गया हुआ नहीं समझना चाहिये। मगर इन लेखों में

वर्णित लाभों की हमें उम्मेद नहीं रखनी चाहिये, क्योंकि ये लाभ तो उसी को होंगे जिसने बचपन से संयत-जीवन बिताया होगा। और तीसरी कठिनाई जो पड़ती है वह यह है कि सभी प्रकार के कृत्रिम और बाहरी संयम के रहते हुए भी, हम अपना संयम करने, अपने विचारों को काबू में रखने में असमर्थ होते हैं। और पवित्र जीवन के सभी इच्छुक मुझसे यह बात सुन लेवें कि कभी-कभी बुरा विचार भी शरीर को उतना ही नष्ट करता है जितना कि बुरे काम। विचारों के ऊपर काबू करना बहुत दिनों के अभ्यास के कष्ट और परिश्रम के बाद ही आता है। मगर मेरा पक्का विश्वास है कि उस महान् फल की प्राप्ति के लिये कितना ही वक्त, कोई मिहनत, कोई कष्ट अधिक नहीं कहा जायगा। विचारों की पवित्रता तो तभी आ सकती है, जब प्रत्यक्ष अनुभव जैसा ईश्वर में विश्वास हो।

"स्वर्ग में पवित्रता की इतनी क़द्र है कि जब कोई सच्चा पवित्रात्मा पहुँचता है तो उसकी सेवा को हजारों देवदूत दौड़ते हैं।"

ब्रह्मचर्य का अर्थ है, स्वेच्छा पूर्वक, किसी तरह का विषयानन्द बिलकुल न करना, और उसकी शक्ति को जान बूझ कर उस पर पूरा कब्ज़ा रखना। अगर आदमी का जीवन पवित्र और सङ्कल्प सबल न हो तो वह इन भोगों में पड़ ही नहीं जाता, बल्कि जरूर पड़ेगा ही।

पूर्ण ब्रह्मचर्य से यह लाभ होते हैं; स्नायु-मण्डल पवित्र होता है और सबल बनता है। विशेष इन्द्रियाँ—जैसे कि दृष्टि और श्रवण-

के पोषण, या वृद्धि के लिये ज़रा भी आवश्यक हों। मैं ज़ोर देकर कहता हूँ, इसके विरोध किये जाने का मुझे कुछ भी भय नहीं है कि आदमी ऊपर की बतलायी चीज़ों को या कुछ को ही छोड़े बिना स्वस्थ, पवित्र ब्रह्मचारी का जीवन नहीं बिता सकता; धर्म-भीरु पुरुष नहीं बन सकता।

ऊपर की गिनायी गई चीज़ें आपको छोड़नी ही पड़ेंगी। अगर आप रोगी, असन्तुष्ट विषयी और अल्पायु जीवन नहीं चाहते, अगर आपको स्वस्थ ब्रह्मचारी के जीवन का आनन्द प्राप्त करना और दीर्घायु जीवन बिताना है तो आप नीचे की चीज़ें ख़ूब बर्तिए, इनसे ख़ूब आनन्द उठाइए दृढ़ और निश्चयशील मन पाइए, और रोज़ साँझ सबेरे धार्मिक विचारों में गोता लगाइए।

इन नियमों का सही-सही, श्रद्धा से पालन करने वाले को सम्पूर्ण स्वास्थ्य, शरीर की पवित्रता, आत्मा की उच्चता, और सबसे बड़ी बात, ब्रह्मचर्य की प्राप्ति के लिये सभी आवश्यक साधन प्राप्त रहेंगे। इन नियमों का सही-सही पालन करनेवाली स्त्री को सौन्दर्य-सुख, सुन्दर स्वास्थ्य और चरित्र का सौन्दर्य—मिलेगा और चिरकाल तक वैसा ही बना रहेगा। शरीर, मन और आत्मा की शक्ति वह दैवी पायेगी, उसे स्थिर रक्खेगी मगर सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह पवित्र प्रेममयी और सती होगी।

माण-शक्ति का मस्बय

नाजुक समस्याओं पर प्रकट रूप से विचार करने के लिए, पाठकगण मुझे क्षमा करें। केवल एकान्त में ही इन पर बात-चीत करने में मुझे ख़ुशी होती। परन्तु जिस साहित्य का मुझे अध्ययन करना पड़ा है और महाशय ब्यूरो की पुस्तक की आलोचना पर मेरे पास जो अनेक पत्र आये हैं, उनके कारण समाज के लिए इस महत्व-पूर्ण प्रश्न पर प्रकट रूप से विचार करना आवश्यक हो गया है। एक मलाबारी भाई लिखते हैं—

आप महाशय ब्यूरो की पुस्तक की अपनी समालोचना मे लिखते हैं कि ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता है कि ब्रह्मचर्य-पालन या दीर्घ काल के संयम से किसी को कुछ हानि पहुँचती हो। ख़ैर, मुझे अपने लिए तो तीन सप्ताह से अधिक दिनों तक संयम रखना हानिकारक ही मालूम होता है, इतने समय के बाद प्रायः मेरे शरीर में भारीपन का तथा चित्त और अङ्ग में बेचैनी का अनुभव होने लगता है, जिससे मन भी चिड़चिड़ा-सा हो जाता है। आराम तभी मिलता है, जब संयोग द्वारा या प्रकृति की कृपा होने से यों ही कुछ वीर्य-पात हो लेता है। दूसरे दिन सुबह शरीर

वा मन की कमजोरी का अनुभव करने के बदले में शान्त और हलका हो जाता हूँ और अपने काम में अधिक उत्साह से लगता हूँ।

मेरे एक मित्र को तो संयम हानिकारक ही सिद्ध हुआ। उनकी उम्र कोई ३२ साल की होगी। वे बड़े कट्टर शाकाहारी और धर्मिष्ठ पुरुष हैं। शरीर और मन से वे प्रत्येक दुष्ट आदत से मुक्त हैं। किन्तु तो भी, दो साल पहले तक उन्हें स्वप्न-दोष में बहुत वीर्य-पात हो जाया करता था, जिसके बाद उन्हें बहुत कमजोरी और उत्साह-हीनता होती थी। उसी समय उन्होंने विवाह किया। पेड़ू के दर्द की भी एक बीमारी उन्हें उसी समय हो गयी। एक आयुर्वेदिक वैद्य की सलाह से उन्होंने विवाह कर लिया, और अब वे बिलकुल अच्छे हैं

ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता का, जिस पर हमारे सभी शास्त्र एक मत हैं, मैं बुद्धि से कायल हूँ, किन्तु जिन अनुभवों का मैंने ऊपर वर्णन किया है, उनसे तो स्पष्ट हो जाता है कि शुक्र-ग्रन्थियों से जो वीर्य निकलता है उसे शरीर में पचा लेने की हममें ताकत नहीं है, इसलिए वह जहर-सा बन जाता है। अतएव मैं आप से सविनय अनुरोध करता हूँ कि मेरे ऐसे लोगों के लाभ के लिए जिन्हें ब्रह्मचर्य और आत्म-संयम के महत्व के विषय में कुछ सन्देह नहीं है, यङ्ग-इण्डिया में हठ योग वा प्राणायाम के कुछ साधन बतलाइये, जिनसे हम अपने शरीर में इस प्राण-शक्ति को पचा सकें।

इन भाइयों के अनुभव साधारण नहीं हैं, बल्कि बहुतों के ऐसे ... के नमूने मात्र हैं। ऐसे उदाहरण में जानता हूँ जब

कि अपूर्ण आधार के बल पर साधारण नियम निकालने में जल्दी-बाजी की गयी है। इस प्राण-शक्ति को शरीर में ही पचा रखने और फिर पचा लेने की योग्यता बहुत अभ्यास से आती है। ऐसा तो होना भी चाहिये, क्योंकि किसी भी दूसरे काम से शरीर और मन को इतनी शक्ति नहीं प्राप्त होती है। दवायें, और यन्त्र, शरीर को साधारणतया अच्छी दशा में रख सकते हैं, माना। किन्तु उनसे चित्त इतना निर्बल पड़ जाता है कि वह मनो-विकारों का विरोध नहीं कर सकता और ये मनो-विकार जानी दुश्मन के समान हर किसी को घेरे रहते हैं।

हम काम तो ऐसे करते हैं जिनसे लाभ तो दूर, उलटे हानि ही होनी चाहिये, परन्तु साधारण संयम से ही बहुत लाभ की आशा बारंबार किया करते हैं। हमारी साधारण जीवन-पद्धति विकारों को सन्तोष देने लायक बनायी जाती है; हमारा भोजन, साहित्य, मनोरञ्जन, काम का समय, ये सभी कुछ हमारे पाशविक विकारों को ही उत्तेजना देने और सन्तुष्ट करने के लिए निश्चित किये जाते हैं। हममें-से अधिकांश की इच्छा विवाह करने, लड़के पैदा करने; भले ही थोड़े संयत रूप में हो, किन्तु साधारणतः सुख भोगने की ही होती है। और आखीर तक कमोबेश ऐसा होता ही रहेगा।

किन्तु साधारण नियम के अपवाद जैसे हमेशा से होते आये हैं वैसे अब भी होते हैं। ऐसे भी मनुष्य हैं जिन्होंने मानव जाति की सेवा में, या यों कहो कि भगवान् की ही सेवा में जीवन

जगा देना चाहता है। वे वसुधा-कुटुम्ब की और निजी कुटुम्ब की सेवा में अपना समय अलग-अलग बाँटना नहीं चाहते। यह तो ठीक ही है कि ऐसे मनुष्यों के लिये उस प्रकार रहना सम्भव नहीं है कि जिस जीवन से खास किसी व्यक्ति विशेष की ही उन्नति सम्भव है। जो भगवान् की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य्य-व्रत लेंगे, उन पुरुषों को जीवन की रिआयतों को छोड़ देना पड़ेगा और इस कठोर संयम में ही सुख का अनुभव करना होगा। दुनिया में वे भले ही रहें, परन्तु वे दुनियादार नहीं हो सकते। उनका भोजन, धन्धा, काम करने का समय, मनोरञ्जन, साहित्यिक-जीवन का उद्देश्य आदि सर्व साधारण से अवश्य ही भिन्न होंगे।

अब इस पर विचार करना चाहिये कि पत्र-लेखक और उनके मित्र ने संपूर्ण-ब्रह्मचर्य्य पालन को क्या अपना ध्येय बनाया था और अपने जीवन को क्या उसी ढांचे में ढाला भी था। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया था, तो फिर यह समझने में कुछ कठिनाई नहीं होगी कि वीर्य्य-पात से पहले आदमी को आराम क्योंकर मिलता था और दूसरे को निर्बलता क्यों होती थी। उस दूसरे आदमी के लिए विवाह ही दवा थी। अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जब मन में केवल विवाह-सुख का ही विचार भरा हो तो उस स्थिति में अधिकांश मनुष्यों के लिए विवाह ही प्राकृत दशा और
जो विचार दबाये न जाने पर भी अमूर्त ही छोड़ दिया
...की शक्ति, वैसे ही विचार की अपेक्षा जिनको हम मूर्त
यानी जिसका अमल कर लेते हैं, कहीं अधिक होती

है। जब उस क्रिया का हम यथोचित संयम कर लेते हैं तो, उसका प्रभाव विचार पर भी फिर पड़ता है और विचार का संयम भी होता है। इस प्रकार जिस विचार पर अमल कर लिया, वह कैदी सा बन जाता है और काबू में आ जाता है। इस दृष्टि से विवाह भी एक प्रकार का संयम ही मालूम होता है।

मेरे लिए, एक अखबारी लेख में उन लोगों के लाभ के लिए जो नियमित संयम जीवन बिताना चाहते हैं, व्योरेवार सलाह देनी ठीक न होगी। उन्हें तो मैं, कई वर्ष हुए इसी उद्देश्य से लिखे हुए अपने ग्रन्थ *'आरोग्य-विज्ञान'* को पढ़ने की सलाह दूँगा। नये अनुभवों के अनुसार इसे कहीं-कहीं दुहराने की जरूरत है सही, किन्तु इसमें एक भी ऐसी बात नहीं है, जिसे मैं लौटाना चाहूँ। हाँ साधारण नियम यहाँ भले ही दिये जा सकते हैं।

(१) खाने में हमेशा संयम से काम लेना। थोड़ी मीठी भूख रहते ही चौके से उठ जाना।

(२) बहुत गर्म मसालों से बने हुए और घी-तेल से भरे हुए शाकाहार से अवश्य बचना चाहिये। जब पूरा दूध मिलता हो तो स्नेह (घी, तेल, आदि चिकने पदार्थ) अलग से खाना बिलकुल अनावश्यक है। जब प्राण-शक्ति का थोड़ा ही नाश होता हो तो अल्प भोजन भी काफी होता है।

(३) शुद्ध काम में हमेशा मन और शरीर को लगाये रहना।

(४) सवेरे सो जाना और सवेरे उठ बैठना परमावश्यक है।

(५) सबसे बड़ी बात तो यह है कि संयत-जीवन बिताने

में ही ईश्वर-प्राप्ति की उत्कट जीवन्त अभिलाषा मिली रहती है। जब इस परम तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है तब से ईश्वर के ऊपर यह भरोसा बराबर बढ़ता ही जाता है कि वे स्वयम् ही अपने इस यंत्र को (मनुष्य के शरीर को) विशुद्ध और चालू रखेंगे। गीता में कहा है—

"विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते॥"

यह अक्षरशः सत्य है।

पत्र-लेखक आसन और प्राणायाम की बात करते हैं। मेरा विश्वास है कि आत्म-संयम में उनका महत्त्व-पूर्ण स्थान है। परन्तु मुझे इसका खेद है कि इस विषय में मेरे निजी अनुभव, कुछ ऐसे नहीं है जो लिखने लायक हों। जहाँ तक मुझे मालूम है, इस विषय पर इस जमाने के अनुभव के आधार पर लिखा हुआ साहित्य है ही नहीं। परन्तु यह विषय अध्ययन करने योग्य है। लेकिन मैं अपने अनभिज्ञ पाठकों को इसके प्रयोग करने या जो कोई हठयोगी मिल जाय उसी को गुरू मान लेने से सावधान कर देना चाहता हूँ। उन्हें निश्चय जान लेना चाहिये कि संयत और धार्मिक जीवन में अभीष्ट संयम के पालन की काफ़ी शक्ति है।

बालिका-हत्या

नवजीवन के एक पाठक लिखते हैं—

"आगले सोमवार" आसाढ़ सुदी नौवमी के दिन १२ वर्ष की एक निर्दोष बालिका की वृद्ध-विवाह की वेदी पर बलि होने वाली है। वर महाराज नागर ब्राह्मण हैं। उम्र ५५ वर्ष की होगी! साल में ३६५ दिन दवा के भरोसे जीते हैं। उनके लड़के लड़कियाँ भी हैं। लड़की बेचारी बे माँ-बाप की है। क्या आप इस विवाह को रोक नहीं सकते ? या किसी भी प्रकार, इस बालिका-हत्या को क्या आप रोक नहीं सकते ?"

उन्होंने नाम और पता सब शुद्ध लिखा है, तो भी मैं इस विवाह को रोकने में असमर्थ हूँ। पत्र पिछले सप्ताह में ही मुझे मिला। वर को या लड़की को उनके किसी सम्बन्धी को मैं जानता नहीं। उनके गाँव में कभी गया नहीं। इसे मेरी भीरुता कहो या विवेक-बुद्धि; परन्तु इस मामले में पड़ने की मेरी हिम्मत नहीं होती है। पत्र की सब बातें सही मानने पर तो मन में अवश्य ही ऐसी इच्छा हुई कि मैं स्वयं उस गाँव में जाऊँ और इस बूढ़े के जान-पहचान वालों से मिलूँ या लड़की के ही सम्बन्धियों से मिल कर

उन्हें समझाऊँ। परन्तु इतना पुरुषार्थ मैं नहीं कर सका। तब सोचा कि नाम, गाँव छोड़ कर सब बातें लिख दूँ और आगे कभी कोई अगर ऐसा विकराल काम करते समय मेरा यह लेख देख कर रुक जाय तो उसी में सन्तोष मानूँ।

विषय-शक्ति के सिवाय, इस शादी का और क्या दूसरा कारण हो सकता है? धर्म तो यों कहता है कि मनुष्य के लिए एक ही विवाह ठीक है। स्त्री अगर बची भी हो, मगर विधवा हो जाय तो ऊँची जातियों में तो उसे जन्म भर विधवा ही रहना होगा। परन्तु बूढ़ी उम्र में भी पुरुष, छोटी बालिका से विवाह कर सकता है, यह कैसी असह्य और दुःख-जनक स्थिति है! जाति-व्यवस्था का समर्थन यदि किसी बात से हो सके, तो वह यही है कि वह ऐसे अत्याचारों को रोक सके।

जाति के यदि बड़े-बूढ़े वा युवक-वर्ग हिम्मत करें तो ऐसी दयाजनक स्थिति न होगी और न देखने में आवेगी। दुर्भाग्य से बड़े लोग तो अपना धर्म भूल गये हैं। अपनी जाति की नैतिक प्रतिष्ठा के रक्षक होने के बदले वे तो प्रायः उसके भक्षक ही देखने में आते हैं। उनकी दृष्टि सेवा-भाव व परमार्थ के बदले स्वार्थ की हो गई है। जहाँ स्वार्थ न होता है, और शुभेच्छा भी होती है, वहाँ उनकी हिम्मत ही नहीं होती, परन्तु भिन्न-भिन्न जातियों की और हिन्दुस्तान की सारी आशा युवक-वर्ग पर ही लगी हुई है। यदि युवक अपने धर्म को समझें और उसी के अनुसार चलें तो वे बहुत ... कर सकते हैं और बेजोड़ विवाह को तो वे असम्भव देकर

सकते हैं। उसमें लोकमत को बना लेने के अलावा और कुछ भी करना बाक़ी नहीं रह जाता है। लोकमत बन जाने पर उसके विरुद्ध जाने की वृद्ध पुरुषों में हिम्मत नहीं हो सकेगी और अपनी लड़कियों को इस प्रकार पानी में फेंकने की पिताओं को भी हिम्मत नहीं होगी।

वृद्ध और बाल्य-विवाह वाले जब धर्म-रक्षा, गो-रक्षा, और अहिंसा की बातें करते हैं तो हँसी आती है। बात की बात में करने लायक सुधारों को ताक़ पर रख कर स्वराज्य इत्यादि की बड़ी-बड़ी बातें करना, आकाश-कुसुम तोड़ने के समान है। जिनमें स्वराज्य लेने का जोश आ गया है, उनमें साधारण सामाजिक सुधार कर लेने की योग्यता तो उससे पहले ही आ जानी चाहिए। स्वराज्य लेने की शक्ति तन्दुरुस्ती की निशानी है और जिसका एक भी अङ्ग रोगी होवे उसे तन्दुरुस्त नहीं कहते हैं। प्रत्येक नवयुवक को, और प्रत्येक देश-हित-चिंतक को यह बात याद रखने की आवश्यक है।

विधवा और विधुर

जब से विधवा-विवाह के बारे में मैंने अपना अभिप्राय प्रकट किया है, तब से कई प्रकार के प्रश्न आते हैं। बहुतेरों के उत्तर देने की आवश्यकता न प्रतीत होने से मैं उनका उल्लेख नहीं करता मगर निम्न लिखित प्रश्नावली विचारणीय है—

१—किस उम्र तक की विधवाओं को शादी करने की अनुमति दी जाय?

२—विधवा-विवाह की स्वीकृति मिलने पर निश्चित उम्र से अधिक आयु की विधवा यदि अपना विवाह कर देने का कहे और उसके लिये उद्यत हो जाय तो उसे किस प्रकार रोका जाय?

३—विधवा-विवाह के पास हो जाने पर यदि सन्तान-वती और गत-यौवन विधवाएँ विवाह करना चाहे तो क्या उन्हें ऐसा करने की अनुमति दी जाय?

४—श्रीयुत रामानन्द चटर्जी, सम्पादक 'माडर्न-रिव्यू' द्वारा एक लेख लाहौर से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी पत्र ' ' में प्रकाशित हुआ है, उससे प्रकट होता है कि ३५

कहाँ तक की उम्र तक की विधवाएँ पुनर्विवाह कर सकती हैं। क्या यह उचित है ?

४—पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित हो जाने पर विधवाओं में फिर से शादी कर लेने की इच्छा जागृत हो जायगी और वे विधवाएँ भी जो अब तक लोक-प्रथा के कारण विवाह का ध्यान तक नहीं करती थीं, विवाह करने लगेंगी।"

इन प्रश्नों के पृथक्-पृथक् उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इन प्रश्नों के बारे में मेरे अभिप्राय के न समझने के कारण मनुष्यों में खलबली फैल रही है। जो अधिकार यानी रियायत विधुर को है, वही विधवा को होनी चाहिए, अन्यथा यह विधवा पर बलात्कार करना है, और बलात्कार हिंसा है, जिसका परिणाम बुरा ही होता है। जो प्रश्न विधवा के लिए किये जाते हैं, वे विधुर के लिए उठते ही नहीं हैं। इसका कारण तो यही हो सकता है कि स्त्रियों के लिए पुरुष ने क़ानून बनाए हैं। यदि क़ानून बनाने का कार्य स्त्रियों के जिम्मे होता, तो स्त्री कभी अपना अधिकार पुरुष से कम नहीं रखती। जिन मुल्कों में स्त्रियों को क़ानून बनाने का अधिकार है, वहाँ स्त्रियों ने भी अपने लिए ऐसे ही आवश्यक क़ानून बना लिये हैं। अतएव उक्त प्रश्नों का उत्तर यह हुआ कि पिता का धर्म है कि वह निर्दोष अजान विधवा का पुनर्लग्न करे, और, जो विधवा पुनर्लग्न करने की इच्छा करे उसके रास्ते में कोई रुकावट न डाली जाय।

व्यवस्था से सब विधवाएँ पुनर्लग्न कर लेंगी, जिन मुल्कों में विधवा को पुनर्लग्न करने की रियायत है, वहाँ भी सब विधवाएँ शादी नहीं करतीं, न सब विधुर ही शादी करते हैं। जिस वैधव्य का पालन स्वेच्छा से होता है, वह हमेशा सराहनीय है। बलात् पलाया जाने वाला वैधव्य निन्द्य है और वर्णसंकरता-वर्धक है। मैं ऐसी अनेक विधवाओं को जानता हूँ, जिनके मार्ग में कोई रुकावट न होते हुए भी जो पुनर्लग्न करना नहीं चाहती।

विधवा-विवाह

[१]

एक पत्र-प्रेषक ठीक ही पूछते हैं कि हिन्दू विधवाओं के सम्बन्ध में सर गंगाराम के दिये हुए अंकों का तात्पर्य क्या सभी हिन्दुओं से है या केवल उनसे जो चलन के कारण पुनर्विवाह नहीं कर सकती हैं ? मैंने सर गंगाराम से इस प्रश्न का उत्तर मँगवा लिया है और उनका कहना है कि मेरे दिये हुए अंकों में समस्त हिन्दू-जाति की विधवाएँ आ जाती हैं।

सर गंगाराम ने यह भी लिखा है कि "केवल एक श्रेणी की विधवाओं के अंक देना तो बेकार होता। हम सबको यह बात मालूम है कि मुसलमानों और ईसाइयों में विधवा का पुनर्विवाह हो सकता है। तिस पर भी इन जातियों में ऐसी अनेक विधवाएँ हैं जो कि आगे या पीछे विवाह करेंगी ही।

मैं तो केवल हिन्दू विधवाओं से पुनर्विवाह न करने की रुकावट को उठाना चाहता हूँ, मैं प्रत्येक विधवा को पुनर्विवाह करने के लिए मजबूर करना नहीं चाहता।"

निस्सन्देह ये विचार अच्छे हैं, लेकिन हिन्दुओं में केवल वे

ही उपजातियाँ इस बन्धन में हैं, जिनमें पुनर्विवाह वर्जित है। इन उपजातियों को छोड़ कर शेष सभी हिन्दुओं में विधवाएँ क़रीब-क़रीब उतनी ही आज़ादी के साथ विवाह करती हैं जितनी कि ईसाइयों और मुसलमानों में। हाँ, न्याय की दृष्टि से यह कहना मुनासिब होगा कि सभी ईसाई या मुसलमान विधवाएँ पुनर्विवाह "आगे या पीछे" नहीं कर लिया करती हैं। इनमें ऐसी बहुत सी विधवाएँ हैं जो अपनी स्वेच्छा से अविवाहिता ही रहती हैं। यह बात तो ठीक है कि जिन जातियों में पुनर्विवाह मना है उनके अतिरिक्त अन्य जातियों में भी इस बात की ओर झुकाव रहता है, कि वे "उच्च" कहलाने वाली जातियों की देखा-देखी अपनी जाति की विधवाओं को अविवाहिता ही रखें, लेकिन जब तक हमें ठीक-ठीक संख्या का पता नहीं चलता है, तब तक यह बिल्कुल ठीक-ठीक बतलाना मुश्किल है कि विधवाओं को पुनर्विवाह से रोकने की प्रथा ने कहाँ तक नुकसान पहुँचाया है। आशा है कि सर गंगाराम की संस्था और अन्य संस्थाएँ जिन्होंने इस विषय को अपना बना रखा है, जरूरी आँकड़े इकट्ठा करके उन्हें छपवायेंगी।

इस बात का ठीक-ठीक पता लगा लेना आवश्यक है कि "उच्च जातियों में जहाँ पुनर्विवाह वर्जित है २० वर्ष से नीची उम्र की [illegible] कितनी हैं। एक पत्र लिखने वाले जिन्होंने कि शायद [illegible] विरुद्ध प्रचलित बंधन को न्यायसंगत ठहराने की [illegible] हाकर मुझे पत्र लिखा है, तथा ऐसे ही विचार

रखने वाले व्यक्तियों को उन बुराइयों को न भूल जाना चाहिए जो कि युवती विधवाओं को पुनर्विवाह न करने देने के कारण उत्पन्न होती हैं। यदि एक भी बाल-विधवा अविवाहिता हो तो इस अन्याय को मिटाना जरूरी है।

[२]

एक विधवा बहन लिखती हैं—

"नवजीवन" में आप या अन्य कोई समय-समय पर विधवाओं के विषय में लेख लिखते रहते हैं, उन सबका यह अभिप्राय होता है कि कम उम्र वाली विधवाओं का पुनर्विवाह हो तो अच्छा। आत्मोन्नति को अप्राप्य मानने वाले तो ऐसा लिख सकते हैं, पर जब आप ऐसा लिखते हैं तब हृदय को भारी चोट पहुँचती है। अन्य देशों के अनुकरण से भारत की जो अवनति हुई है, उसमें अभी इतनी ही कमी रह गई है, क्या अब उस कमी की भी पूर्ति कर देना है? कितने ही लोगों का कहना है कि 'समाज की वर्तमान सामाजिक अवस्था तथा परिस्थिति को भी देखना पड़ता है।' पर मुझे तो यह कथन मनुष्य की केवल वासना का पोषण करने के लिए ढूंढा हुआ बहाना ही मालूम होता है। जब तक वासना रूपी दीपक में भोग रूपी तेल डालते जायँगे तब तक वह अधिकाधिक प्रज्वलित होता जायगा; इसका सच्चा उपाय यह है कि हम उसे किस तरह बुझा सकते हैं। बचपन ही से माता के

ही उपजातियाँ इस बन्धन में हैं, जिनमें पुनर्विवाह वर्जित है। इन उपजातियों को छोड़ कर शेष सभी हिन्दुओं में विधवाएँ क़रीब-क़रीब उतनी ही आज़ादी के साथ विवाह करती हैं जितनी कि ईसाइयों और मुसलमानों में। हाँ, न्याय की दृष्टि से यह कहना मुनासिब होगा कि सभी ईसाई या मुसलमान विधवाएँ पुनर्विवाह "आगे या पीछे" नहीं कर लिया करती हैं। इनमें ऐसी बहुत सी विधवाएँ हैं जो अपनी स्वेच्छा से अविवाहिता ही रहती हैं। यह बात तो ठीक है कि जिन जातियों में पुनर्विवाह मना है उनके अतिरिक्त अन्य जातियों में भी इस बात की ओर झुकाव रहता है, कि वे "उच्च" कहलाने वाली जातियों की देखा-देखी अपनी जाति की विधवाओं को अविवाहिता ही रखें, लेकिन जब तक हमें ठीक-ठीक संख्या का पता नहीं चलता है, तब तक यह बिल्कुल ठीक-ठीक बतलाना मुश्किल है कि विधवाओं को पुनर्विवाह से रोकने की प्रथा ने कहाँ तक नुक़सान पहुँचाया है। आशा है कि सर गंगाराम की संस्था और अन्य संस्थाएँ जिन्होंने इस विषय को अपना बना रखा है, ज़रूरी आँकड़े इकट्ठा करके उन्हें छपवायेंगी।

इस बात का ठीक-ठीक पता लगा लेना आवश्यक है कि "उच्च जातियों में जहाँ पुनर्विवाह वर्जित है २० वर्ष से नीची उम्र की विधवाएँ कितनी हैं। उक्त पत्र लिखने वाले जिन्होंने कि शायद पुनर्विवाह के विरुद्ध प्रचलित बंधन को न्यायसंगत ठहराने की इच्छा से प्रेरित होकर मुझे पत्र लिखा है, तथा ऐसे ही विचार

रखने वाले व्यक्तियों को इन बुराइयों को न भूल जाना चाहिए जो कि दुःखी विधवाओं को पुनर्विवाह न करने देने के कारण उत्पन्न होती हैं। यदि एक भी बाल-विधवा अविवाहित हो तो इस अन्याय को मिटाना ज़रूरी है।

[२]

एक विधवा बहन लिखती हैं—

"नवजीवन" में आप या अन्य कोई समय-समय पर विधवाओं के विषय में लेख लिखते रहते हैं, उन सबका यह अभिप्राय होता है कि कम उम्र वाली विधवाओं का पुनर्विवाह हो तो अच्छा। आत्माहुति को अमान्य मानने वाले तो ऐसा लिख सकते हैं, पर जब आप ऐसा लिखते हैं तब हृदय को भारी चोट पहुँचती है। अन्य देशों के अनुकरण से भारत की जो अवनति हुई है, उसमें अभी इतनी ही कमी रह गई है, क्या अब उस कमी की भी पूर्ति कर देना है? कितने ही लोगों का कहना है कि 'समाज की वर्तमान सामाजिक अवस्था तथा परिस्थिति को भी देखना पड़ता है।' पर मुझे तो यह कथन मनुष्य की केवल वासना का पोषण करने के लिए ढूंढा हुआ बहाना ही मालूम होता है। जब तक वासना रूपी दीपक में भोग रूपी तेल डालते जायँगे तब तक वह अधिकाधिक प्रज्वलित होता जायगा; इसका सच्चा उपाय यह है

किस तरह बुझा सकते हैं। बचपन ही से माता के

दूध के साथ ही लड़कों और लड़कियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वे परिस्थितियों के अनुकूल अपना जीवन बनाना सीखें। आप शायद कहेंगे 'ऐसा होने में तो बहुत समय लगेगा' पर यों भी आज सारा समाज पुनर्विवाह का समर्थक नहीं है। अतएव इस दशा में अनुकूल लोकमत होने के लिये भी समय जरूर ही लगेगा। फिर ऐसी प्रगति किस काम की है जो काल-व्यय के साथ-साथ आत्मा का ह्रास करती हो। देवी गार्गी और मैत्रेयी, झाँसी की रानी और चित्तौड़ की पद्मिनी की जननी यही भारत-माता है; उसकी लड़कियों को पुनर्विवाह क्यों करना चाहिये? चरखे के प्रताप से अन्न भरण-पोषण की भी वैसी चिन्ता नहीं रही। कुटुम्ब की यदि एक भी स्त्री विधवा हो जाय तो उससे सारे कुटुम्ब के पुण्य की खामी पाई जाती है, इसका प्रायश्चित उन कुटुम्बियों को उस विधवा के प्रति अपना कर्तव्य-पालन करके करना चाहिये। इसके विपरीत उससे दूर-दूर भागने से कैसे काम चल सकता है? ब्रह्मचर्य के तो आप हामी हैं। विधवा जिन्हें कुदरत ने ही ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी है, देश की आदर्श सेविका क्यों न बनें? जगत् की माता बन कर क्यों न संसार के दुःखों का हरण करें? मैंने ऐसी कई विधवाएँ देखी हैं जो पाँच से सात वर्ष की उमर में ही विधवा हो गई हैं और जो अभी शान्ति और सन्तोष के साथ अपने कुटुम्बियों की यथा-शक्ति सेवा कर रही हैं।"

लेखिका बहन को यह पत्र शोभा देता है। पर इससे विधवा विवाह के प्रश्न का निपटारा नहीं हो सकता। बाल-विधवा धर्म

जैसी किसी वस्तु को ही नहीं जान सकती फिर विधवा-धर्म की बात ही हम कैसे कर सकते हैं ? धर्म-पालन के साथ-साथ हम यह कल्पना कर लेते हैं कि एक बालक जिसे झूठ सच का कोई ज्ञान नहीं है, असत्य के दोष का भाजन है ? नौ साल की बालिका नहीं जानती कि विवाह क्या वस्तु है, न वह यही जानती है कि वैधव्य क्या चीज है ! जब उसने विवाह ही नहीं किया तो वह विधवा किस तरह मानी जा सकती है ? उसका विवाह तो करते हैं माता-पिता और वे ही समझ लेते हैं कि वह विधवा हो गई; अर्थात् यदि वैधव्य का पुण्य किसी को मिलता हो तो कहना होगा कि वह उसके माता-पिता को ही मिलता है। पर क्या नौ साल की बालिका का बलिदान कर वे इस पुण्य के और यश के भागी हो सकते हैं ? और यदि हो भी सकते हों तो हमारे सामने उस बालिका का सवाल तो ज्यों का त्यों खड़ा ही रहता है। मान लीजिये कि अब वह बीस बरस की हो गई। ज्यों-ज्यों वह समझदार होती गई, उसने अपने आस पास की परिस्थिति से यह जान लिया कि वह विधवा मानी जाती है पर इसके धर्म को तो वह नहीं समझती। यह भी हम मान लें कि बीस बरस की अवस्था को पहुँचते-पहुँचते धीरे-धीरे उसमें स्वाभाविक विकार पैदा हुए और बढ़े भी। अब उस बाला को क्या करना चाहिए ? माता-पिता पर तो वह अपने भावों को प्रकट कर ही नहीं सकती, क्योंकि उन्होंने यह संकल्प कर लिया है कि मेरी युवती लड़की विधवा है उसका विवाह नहीं करना है।

दूध के साथ ही लड़कों और लड़कियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वे परिस्थितियों के अनुकूल अपना जीवन बनाना सीखें। आप शायद कहेंगे 'ऐसा होने में तो बहुत समय लगेगा' पर यों भी आज सारा समाज पुनर्विवाह का समर्थक नहीं है। अतएव इस दशा में अनुकूल लोकमत होने के लिये भी समय जरूर ही लगेगा। फिर ऐसी प्रगति किस काम की है जो काल-व्यय के साथ-साथ आत्मा का ह्रास करती हो। देवी गार्गी और मैत्रेयी, झाँसी की रानी और चित्तौड़ की पद्मिनी की जननी यही भारत-माता है; उसकी लड़कियों को पुनर्विवाह क्यों करना चाहिये? चरखे के प्रताप से अब भरण-पोषण की भी वैसी चिन्ता नहीं रही। कुटुम्ब की यदि एक भी स्त्री विधवा हो जाय तो उससे सारे कुटुम्ब के पुण्य की खामी पाई जाती है, इसका प्रायश्चित उन [illegible]म्बियों को उस विधवा के प्रति अपना कर्तव्य-पालन करके [illegible]ाहिये।
इसके विपरीत उससे दूर-दूर भागने से कैसे
ब्रह्मचर्य के तो आप हामी हैं। विधवा जिन्हें
की दीक्षा दी है, देश की आदर्श [illegible]
माता बन कर क्यों न संसार के
कई विधवाएँ देखी हैं जो पाँच
हो गई हैं और जो अभी
कुटुम्बियों की यथा-शक्ति [illegible]
लेखिका बहन को
विवाह के प्रश्न का [illegible]

अनीति बढ़ती जायगी। बाल-पत्नी में आत्म-संयम के लिए अवकाश ही नहीं। आत्म-संयम सावित्री ने किया, सीता ने किया, दमयन्ती ने किया। ऐसी देवियों के विषय में हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि उन्हें वैधव्य प्राप्त होने पर वे पुनर्विवाह करेंगी। इस प्रकार का शुद्ध वैधव्य रमाबाई रानडे का था। आज वासन्ती देवी को यह वैधव्य प्राप्त है, ऐसा वैधव्य हिन्दू-संसार का अलंकार है, उससे वह पुनीत होता है। बाल-विधवाओं के कल्पित वैधव्य से हिन्दू-संसार पतित होता जा रहा है। प्रौढ़ विधवाएँ अपने वैधव्य को सुशोभित करते हुए बाल-विधवाओं का विवाह करने के लिये कटिबद्ध हों और हिन्दू-समाज में इस प्रथा का प्रचार करें। उन बहनों को जो उपर्युक्त पत्र लिखने वाली बहनों के सदृश विचार रखती हैं अपने इस विचार को सुधार लेना चाहिए।

मैं जिस निर्णय पर पहुँचा हूँ उसका कारण बालिकाओं का दुःख नहीं है, बल्कि इसका कारण है मेरे हृदय में उत्पन्न वैधिकता से सम्बन्ध रखने वाला सूक्ष्म-धर्म विचार और उसी को प्रदर्शित करने का प्रयत्न मैंने यहाँ किया है।

यह तो एक कल्पित दृष्टान्त है। भारत में ऐसी एक दो नहीं, हजारों विधवायें हैं। हम यह तो देख ही चुके कि उनको वैधव्य का कोई पुण्य फल नहीं मिलता। ये युवतियाँ अपने विकारों को तृप्त करने के लिये अनेक पापों में फँसती हैं। इसके लिये कौन जिम्मेवार है ? मेरे ख्याल से उनके माता-पिता तो अवश्य ही उनके इन पापों में हिस्सेदार होते हैं। पर इससे हिन्दू धर्म कलंकित होता है, और प्रतिदिन क्षीण होता जाता है। धर्म के नाम पर अनीति बढ़ती जाती है, इसलिए यद्यपि इन बहन के जैसे ही विचार स्वयं मैं भी पहले रखता था, पर अब विशेष अनुभव से मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि जो बाल-विधवाएँ युवावस्था को प्राप्त करने पर पुनर्विवाह करने की इच्छा करें उन्हें उसके लिए पूरी स्वतंत्रता और उत्तेजना मिलनी चाहिए; इतना ही नहीं बल्कि माता-पिता को चिन्तापूर्वक इन बालाओं का विवाह उचित रीति से कर देना चाहिए। इस समय तो पुण्य के नाम पर पाप का प्रचार हो रहा है।

बाल-विधवाओं का इस तरह विवाह कर देने पर भी हिन्दू धर्म शुद्ध वैधव्य से तो जरूर ही अलंकृत रहेगा। दम्पति स्नेह का अनुभव कर लेने वाली स्त्री यदि विधवा हो जाय और वह स्वयं पुनर्विवाह न करना चाहे तो उसका संयम बाहरी नियन्त्रण का अहसानमन्द न रहेगा और न संसार में ऐसी शक्ति ही है जो उसे विवाहित करने के लिये बाध्य कर सके। उसकी स्वाधीनता तो हमेशा सुरक्षित रहेगी।

बाल पत्नियों के आँसू

"बङ्गाल की एक हिन्दू महिला" लिखती हैं—मैं नहीं जानती कि हिन्दू-समाज की बाल-पत्नियों के पक्ष में लिखने के लिए मैं आपको किस प्रकार धन्यवाद दूँ! मद्रास वाली घटना अपने ढंग की अकेली नहीं है। एक वर्ष हुआ कि वैसी ही एक घटना कलकत्ते में हुई थी। उस लड़की की अवस्था केवल दस वर्ष की थी। अपने पति के साथ दो रात रह कर उसने पति के पास जाने से क़तई इन्कार कर दिया। लेकिन एक दिन उसकी माँ ने उसे अपने पति को पान दे आने को भेजा। शायद उस बेचारी लड़की ने सोचा कि मैं पान देते ही लौट आऊँगी, लेकिन उसके आदमी ने पान लेकर दरवाजा बन्द कर लिया और वह कमरे के बाहर न आ सकी। थोड़ी ही देर में एक दर्दनाक हालत सुनाई दी। लड़की की माँ कमरे की ओर दौड़ी। जब दरवाजा खोला गया, तब लड़की मरी हुई पाई गई। उसके सिर में बड़ी सख्त चोट आई थी। उस आदमी पर मुकदमा चला और उसे फाँसी दण्ड मिला।

हमारे समाज में न जाने ऐसे कितने मामले अप्रकाशित रूप से नहीं हुआ करते हैं! मैं ख़ुद कई ऐसे मामले जानती हूँ कि

जिनमें बाल-पत्नियों ने सयानी होने के पहले पति से
चेष्टा की है, लेकिन उनका पक्ष कौन लेगा? हमारे समाज में ।
सदा अपना दुःख नम्रता के साथ मौन रह कर झेलती हैं। किसी भी कुप्रथा के विरुद्ध युद्ध करने की शक्ति उनमें नहीं रही है! दूसरी ओर हमारे पुरुष लोग, जिनमें असीम शक्ति है, सदा अपने ही सुख की बातें सोचा करते हैं और दुखिया स्त्री के आराम का ख्याल भी नहीं करते!

मेरी एक सहेली दस वर्ष की अवस्था में ब्याही गई। वह अपने पति के पास जाना नहीं चाहती थी, इसलिए पति ने एक सयानी लड़की से दूसरा विवाह कर लिया। वह अभागिनी बाला आज पूर्ण युवावस्था में है और अपने पिता के यहाँ रहती है!

मैंने एक महिला से सुना है कि गाँवों में, नीच जातियों में पति अपनी बाल-पत्नियों को इस लिए पीटा करते हैं कि वे उनसे दूर रहने की कोशिश करती हैं और रात के समय अपने पति के शयनागार में आसानी से पहुँचाई नहीं जा सकतीं!

जहाँ पीड़ितों की कोई सुनवाई नहीं और उनको अपने कष्ट स्वयं प्रकट करने का कोई मौक़ा नहीं, वहाँ राक्षसी प्रथाओं का समर्थन करना आसान है।

चाहे उपरोक्त चित्र सच हो अथवा अत्युक्ति पूर्ण, बात ठीक है। मुझे इसके समर्थन में साक्षी या प्रमाण खोजने की ज़रूरत नहीं है। मैं एक चिकित्सक को जानता हूँ; उनकी डाक्टरी ख़ूब चलती है; उनकी जब पहली स्त्री के मरने पर उन्होंने

छोटी उमर वाली कन्या के साथ शादी कर ली, जो कि उनकी लड़की जैसी है। वे दोनों पति-पत्नी की भांति रहते हैं। मैं एक दूसरी मिसाल भी जानता हूँ; इसमें एक ६० वर्ष के रिटायर्ड इन्स्पेक्टर ने एक ६ वर्ष की कन्या से पाणिग्रह किया! हालांकि सब लोग इस बेहूदा हरकत को जानते थे और उसे ऐसा मानते थे, लेकिन वह अपने पद पर बना रहा और सरकार तथा जनता उसकी इज्जत भी करती रही! ऐसी और भी कई घटनायें अपने तथा अपने दोस्तों की याददाश्त से बतलाई जा सकती हैं।

उपरोक्त महिला का यह कथन ठीक है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियों में किसी भी कुप्रथा के विरुद्ध युद्ध करने की शक्ति शेष नहीं रह गई है। इसमें शक नहीं कि पुरुष ही मुख्यतः समाज की ऐसी स्थिति के लिए जिम्मेवार हैं, लेकिन क्या स्त्रियाँ सारा दोष पुरुषों के मत्थे मढ़ कर अपनी आत्मा में निर्दोष रह सकती हैं? क्या पढ़ी-लिखी स्त्रियों को अपने समाज के प्रति तथा पुरुष समाज के प्रति भी यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे सुधार का काम अपने ऊपर उठा लें? यह शिक्षा जिसे वे पा रही हैं, किस काम की है, अगर विवाह के उपरान्त वे अपने पतियों के हाथ में कठपुतलियाँ बन जाय और कम उम्र में ही बच्चे पैदा करने लग पड़ें? वे अगर चाहें तो अपने खातिर वोट्स् के लिए लड़ सकती हैं? उसमें न तो बहुत समय ही जाता है और न कुछ कष्ट ही होता है। वह उन्हें निर्दोष आनन्द का साधन प्रस्तुत करते हैं। लेकिन ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं जो बालपत्नियों और बाल-विधवाओं के उद्धार का काम करें और

जो तब तक न स्वयं चैन लें और न पुरुषों का चैन लेने दें जब तक कि बाल-विवाह असंभव न हो जायँ और जब तक प्रत्येक बालिका में इतना साहस न आ जाय कि वह परिपक्व अवस्था में उसकी ही पसंदगी के वर के साथ विवाह करने के सिवा शेष दशाओं में विवाह करने से इनकार कर सके ?

४

स्त्रियाँ और गहने

तामिल नाड़ू से एक महिला डाक्टर ने मेरे पास गहनों की भेंट भेजी है। उसके साथ जो पत्र भेजा है, उससे भेंट का महत्व बढ़ जाता है। इसलिए, और चूँकि दूसरों के लिए यह पत्र उदाहरण का कार्य करेगा, नाम हटा कर मैं इस पत्र का सारांश नीचे देता हूँ।

'कल मैंने आपकी सेवा में एक जोड़ी कान की बालियाँ और हीरे की एक अँगूठी भेजी थी। ये मुझे १२ वर्ष हुए—साहेब के राजमहल से महाराजा साहेब के पुत्र-जन्म के अवसर पर मिली थी, मुझे यह सुन कर बड़ा कष्ट हुआ था कि जब आप यहाँ से गुजरे थे, महाराजा साहेब ने सरकार के डर से आपको निमंत्रण तक देने का साहस नहीं किया। आप सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि पहले जो जवाहरात मेरे साथ-साथ रहते थे, उन्हीं को देख कर मेरे मन में अब क्या भावनायें उठने लगीं। अब उन्हें देख कर मेरे दिल में आग लग जाती थी, फिर जिन भूखे करोड़ों के बारे में आपने भाषण किया था, उनके लिए सहानुभूति होने लगती थी। मैंने मन-ही-मन कहा—'क्या ये गहने लोगों के ही धन से नहीं बने हैं?' तब उन्हें आपके पास भेज देने का निश्चय किया। खादी-

इतना तो अच्छा है कि इस बहिष्कार की बदौलत यह भेंट मिली। मगर उन सभी बहिनों को जिनकी नजर से यह लेख गुजरे मैं कहूँगा कि वे भूखों मरने वाले करोड़ों देश-बन्धुओं के प्रति अपने कर्त्तव्य पर विचार करने के लिए किसी ऐसे अवसर की ही खोज में बैठी न रहें। निश्चय ही, इतना समझना तो काफी सहज है कि जब तक देश में करोड़ों आदमी भोजन बिना भूखे रहते हों, तब उन्हें अपना शरीर सजाने या गहने वाली होने के संतोष के लिए ही, गहने रखने का कोई अधिकार नहीं है। जैसा कि मैं पहले भी इन पृष्ठों में कह चुका हूँ, अगर केवल हमारी धनी बहनें ही अपनी फजूलियात छोड़ देवें और उसी सज्जा से संतुष्ट रहें जो कि खादी उन्हें दे सके तो केवल एक इसी से सारा खादी आन्दोलन चलाया जा सकता है, और हिन्दुस्तान की धनी बहनों के इस काम का जो महान् नैतिक असर राष्ट्र पर और विशेष कर भूखों मरने वाले करोड़ों आदमियों पर पड़ेगा, उसका तो हिसाब ही अलग है।

पति-धर्म

एक मित्र लिखते हैं—

'मेरे एक मित्र हैं, वे अपनी स्त्री पर बहुधा इसलिए नाराज रहा करते हैं, कि वह अच्छा और यथेच्छ भोजन बनाकर नहीं देती और घर में ठीक-ठीक सफ़ाई भी नहीं रख सकती। उनका कहना है कि यदि बार-बार कहने पर भी स्त्री ये काम ठीक-ठीक नहीं करती तो उसे उनके कमाये हुए रुपये पैसे का उपभोग करने का कोई हक़ नहीं है, उसे चाहिये कि वह ख़ुद मिहनत कर के कमाई करे और अपना निर्वाह करे। उनका यह भी कहना है कि यदि वह उनसे सम्बन्ध-विच्छेद करके दूसरा पति करना चाहे तो कर सकती है। इस पर से दो प्रश्न उठते हैं—

१—पति के कमाये हुए धन पर स्त्री का कितना अधिकार है?

२—साधारण-सी असुविधाओं के कारण, खर्च के भार से मुक्त होने के लिए पत्नी को बिलकुल छोड़ देने की इच्छा करना कहाँ तक उचित है?

आशा है, आप इनका उत्तर 'हिंदी नवजीवन' द्वारा देने की कृपा करेंगे।'

पति-वर्ग स्त्रियों को पत्नी-धर्म का उपदेश देने के लिए सदा उत्सुक रहता है, और पत्नियों से यहाँ तक कहा जाता है कि वे अपने को पति की मिल्कियत समझें।

पति तो मानता ही है कि उसे पुरुष के नाते जो अधिकार अपने घर-बार, जमीन-जायदाद और पशु इत्यादि पर प्राप्त हैं, ठीक वही अधिकार उसे पत्नी पर भी प्राप्त हैं। इस बात के समर्थन में रामायण जैसे ग्रन्थ का भी अवलम्बन लिया जाता है।

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

रामायण की इस पंक्ति का आधार लेकर समाज में पत्नी दण्डनीय ठहराई जाती है, उसे दण्ड दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि यह दोहा गो० तुलसीदास जी का नहीं है। यदि है भी तो कह सकते हैं कि इन शब्दों में तुलसीदास जी ने अपना अभिप्राय नहीं प्रगट किया है, बल्कि अपने समय में प्रचलित रूढ़ि का निर्णय किया है। यह भी असम्भव नहीं है कि इस बारे में सहज स्वभाव-वश उन्होंने उस समय की प्रथा का विचार किये बिना ही अपनी सम्मति दे दी हो। रामायण भक्ति-निरूपण का ग्रन्थ है, गोस्वामी तुलसीदास जी ने सुधारक की दृष्टि से रामायण नहीं

... है कि उन्होंने रामायण में अपने जमाने की बातों
... खींचा है, सहज-स्वभाव से उनका वर्णन किया है;
संक्षेप में होने पर भी रामायण जैसे अद्वितीय ग्रन्थ

का महत्त्व कम नहीं होता। जैसे रामचरित-मानस में भूगोल की शुद्धता की आशा नहीं की जा सकती, ठीक उसी तरह हम अपने वर्तमान युग के नए विचारों के प्रतिपादन की आशा भी उस ग्रन्थ से न करें। परन्तु यह तो विषयान्तर हुआ। गोस्वामी महाराज ने स्त्रियों के बारे में कुछ ही क्यों न माना हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जो मनुष्य स्त्री को पशु-तुल्य समझता है, उसे अपनी मिल्कियत मानता है, वह अपने अर्द्धांङ्ग को विच्छेद करता है।

पति का धर्म है कि पत्नी को अपनी सच्ची सहधर्मिणी और अर्द्धांङ्गिनी माने, उसके दुःख से दुःखी हो, और उसके सुख से सुखी। पत्नी पति की दासी कदापि नहीं है, न वह पति के भोग की सामग्री ही है। जो स्वतन्त्रता पति अपने लिए चाहता है, ठीक वही स्वतन्त्रता पत्नी को भी होनी चाहिए। जिस सभ्यता में स्त्री-जाति का सम्मान नहीं किया जाता, उस सभ्यता का नाश निश्चित ही है। संसार न अकेले पुरुष से चल सकता है, न अकेली स्त्री से ही, इसके लिये तो एक दूसरे का सहयोग आवश्यक है। स्त्री अगर कोप करे तो आज पुरुष-वर्ग का नाश कर सकती है। यही कारण है कि वह महा-शक्ति मानी गई है।

वाल्मीकि ने सीता जी को गौरव पूर्ण स्थान दिया ही है; हम प्रातः काल सतियों का नाम लेकर पवित्र होते हैं। जो सभ्यता इतनी उच्च है, उसमें स्त्रियों का दर्जा पशु या मिल्कियत के समान कदापि हो ही नहीं सकता।

अब जो प्रश्न पूछे गये हैं उनका उत्तर देना सहज है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि पति के कमाये हुए धन पर स्त्री का पूरा अधिकार है और पत्नी पति की मिल्कियत की अविभाज्य भागीदार है।

पत्नी की रक्षा करना और अपनी हैसियत के मुताबिक उसके भरण-पोषण और वस्त्रादि का प्रबन्ध करना पति का आवश्यक धर्म है।

दिङ्-मूढ़ पति

एक दिङ्-मूढ़ पति लिखते हैं—

'मेरी पत्नी मामूली समझ वाली है। वह मुझे समझ नहीं सकती; वह अज्ञान-अन्धकार में नहीं, लेकिन समझ में है—इस कारण उस पर मुझे दया आती है। कई अवसरों पर वह मुझसे रूठ जाती है, ठीक बात समझाने पर भी नहीं समझती। आपका नाम और उदाहरण देकर मैं जब ब्रह्मचर्य की बात करता हूँ, तो उसे अचरज होता है, वह इस प्रकार की बातों से नफरत करती है। झूठे वहम, माता, देवी, देवता, और महाराजों-गुसाइयों में उसे आस्था है; जब कहता हूँ कि यह सब ढोंग है, तो लगातार बारह घंटों तक मुँह फुलाये रहती है, और बर्ताव में रूखा-पन साफ दिखाई पड़ने लगता है। कई बार यही, अथवा कुछ कम या ज्यादा इसी तरह की बातें हुआ करती हैं। इन पंक्तियों के लिखते समय भी श्रीमती की यही हालत है। कल जन्माष्टमी थी, इसलिए वह मंदिर गईं। मैंने वहाँ जाने से पहले ही कहा कि जाना निरर्थक है। फिर भी साथ था, इसलिए वह चली गईं। आने पर पूछा तो स्त्री-स्वभाव के अनुसार गुस्सा हो आया और अब मुखारविन्द

मलीन हो गया है अकसर यही होता रहता है। फिर भी यह सोच कर कि अज्ञान है, मैं टाल जाता हूँ। अगर यही रफ्तार जीवन पर्यन्त रही तो संसार में शान्ति-जैसी कोई चीज़ मिलेगी क्या?

मुझे तो कवि का यह कथन अक्षरशः सच मालूम पड़ता है कि, 'सब तरह जाँचते हुए सारे संसार में न देखा।' ऐसे समय उसे हमेशा के लिए परित्याग करने का विचार दृढ़ हो जाता है। लेकिन विचार को अमल में लाने से पहले मेरे और उसके भावी जीवन के विचार आने लगते हैं; उस ओर नजर जाती और दीख क्या पड़ता है? सिर्फ़ अन्धकार, असंतोष, निराशा और दुःख। फिर भी मैं तो इसे अपनी कमजोरी ही समझता हूँ कि मैंने उसे अब तक भी त्याग नहीं किया है।

मैं इस संकट से किस प्रकार छूटूँ? आप कहेंगे 'बिंधा सो मोती' अब पहने रहो। लेकिन तो भी जीवन की कटुता तो बनी ही रहेगी। सम्बन्धियों ने जबर्दस्ती व्याह दिया और मैंने उसे क़बूल कर लिया, उसी का फल अब मुझे भोगना पड़ रहा है? मेरी मूर्खता से इस तरह लाभ उठा कर जिन्होंने दूसरों को सदा के लिए दुःख में डुबो दिया है, उन क्रूरों को इस बात का आज भी अनुभव क्यों नहीं होता? इन घातक नियमों ने कोमल कलियों का-युवकों का-जीवन किस तरह मटिया-मेट किया है, उसकी कल्पना आपके लिए तो मुश्किल नहीं है। अगर समाज अब भी नहीं जागा तो आने वाली सन्तान का क्या होगा? इस बारे में आप क्या सलाह देते हैं? यह सवाल मेरे अकेले का ही नहीं है;

मैंने ऐसे अनेक युवकों को देखा है, बेचारे दुःख के दलदल में मर रहे हैं ? अतः क्या आप अपनी आवाज बुलन्द करके उनकी मदद को नहीं दौड़ेंगे ? मैं हाथ जोड़ कर आप से प्रार्थना करता हूँ कि इस दुःख में आप जरूर आश्वासन दीजियेगा, ढाढ़स बँधादेगा। मेरे प्रश्नों से अगर आपके दिल को चोट पहुँचे तो क्या आप इस बालक को क्षमा नहीं करेंगे।'

मैं आश्वासन देता तो जरूर हूँ लेकिन ऐसे संकट के समय अगर मनुष्य खुद आश्वासन न पा सके, तो दूसरे शायद ही उसे ढाढ़स बँधा सकते हैं। हाँ आदमी बहुत कुछ आश्वासन बुद्धियों के संघर्षण से भी पा सकता है। इसलिए इस नवयुवक पति की दिल् नूदता का हम थोड़ा पृथक्करण कर देखें। मालूम होता है कि पति के मन में स्वामित्व की सत्ता आजमाने की इच्छा काम कर रही है। अगर यह बात नहीं और पति-पत्नी को मित्रवत् मानते हों, तो निराशा का कोई कारण नहीं रह जाता, मित्र को हम धीरज के साथ समझाते हैं, उसके न मानने पर निराशा नहीं होते, बलात्कार-जबर्दस्ती नहीं करते। अगर पति को पत्नी से कुछ आशा रखने का अधिकार है, तो पत्नी को भी कुछ-न-कुछ होना चाहिये। देवदर्शन को जाने वाली अनेक पत्नियों को आज कल के सुधारक पतियों की धुन जब पसंद न आती होगी तो वे बेचारियाँ क्या करती होंगी ? वे इन पति को समझाने की हिम्मत तक न करती होंगी, इसलिए इन पति को और इनके समान दूसरों को मैं पहली सलाह तो यह देता हूँ कि वे समझ-बूझ कर अपने स्वामीपन का अधिकार जमाना छोड़ दें।

प्रयत्न करते हैं, अनेक कष्ट सहते हैं, और उसी में सुख मानते हैं। अगर हम यह बात समझ जायँ तो पत्नी के प्रति भी इसी तरह का वर्ताव रक्खें। क्योंकि जो असुविधा और कष्ट इन दिङ्मूढ़ पति को है, वही दूसरों को भी है, यह बात वह खुद क़बूल करते हैं। अगर ऐसे सब पति अपनी पत्नियों को छोड़ दें, तो देश की इतनी सारी स्त्रियों की क्या दशा हो? पति अगर न संभाले-रक्षा न करे तो कौन करे?

आज पति और पत्नी के बीच जो असंगति—जो फ़र्क़ देख पड़ता है, सो भी देश की मौजूदा गिरी हुई हालत की एक निशानी है, यह सोच कर ही इस तरह दिङ्मूढ़ पतियों को अपना मार्ग स्वयं ढूँढ़ लेना चाहिए। इस तरह की समस्याओं को सुलझाते-सुलझाते वे सहज ही स्वराज्य की समस्या को हल करना सीख जायँगे, जिससे उन्हें और देश को दूना लाभ होगा।

वृद्ध-बाल-विवाह

वृद्ध-बाल-विवाह के सम्बन्ध में शोलापुर से एक महेश्वरी नवयुवक लिखते हैं—

हमारे महेश्वरी समाज में विवाह-पद्धति क़रीब-क़रीब नष्ट हो चुकी है। प्रति वर्ष सैकड़ों कामी बूढ़े धन के बल पर बारह-चौदह वर्ष की अबोध कन्याओं से विवाह करके अपनी काम तृप्ति किया करते हैं। इन कामी-जनों की काम-लालसा सारे समाज को रसातल की ओर ले जा रही है। बाल-विवाह और बे-जोड़ विवाह प्रति वर्ष उतनी ही संख्या में होते हैं, जितने कि वृद्ध-विवाह। जिस समाज की विवाह-पद्धति की यह करुणा-जनक दशा हो, उस समाज में से भविष्य में नामी वीरों की आशा करना व्यर्थ है और यह स्पष्ट है कि उस समाज का अस्तित्व भी ख़तरे में है। ऐसे समाज को सुधारने की अत्यन्त आवश्यकता है।

ऐसे अनुचित विवाहों के अवसर पर सत्याग्रह करके उन्हें रोकने के लिए हम ८—१० युवकों ने बाल-वृद्ध-बेजोड़ विवाह [illegible]क दल नामक संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा संघटित करना शुरू कर दिया है। विवाह के हर-एक रस्म पर

परिणाम-कारक सत्याग्रह करने से कम शांति होगी ही। इस पत्र के साथ छपी हुई पत्रिका है, जिससे आपको पता चलेगा कि किस तरह से हमने सत्याग्रह करना ठहराया है। महेश्वरी समाज की विवाह-पद्धति से आप परिचित होंगे ही। उसकी हर एक रस्म पर किस तरह शांति-पूर्ण सत्याग्रह किया जाना चाहिए, इस पर और इसी के पुष्ट्यर्थ अन्य बातों पर (हिन्दी नवजीवन) लिखने की कृपा करें। हमें आशा है, हमारी प्रार्थना स्वीकृत की जायगी।

आप पुरुष और स्त्री के किस आयु से किस आयु तक के विवाह को सुयोग्य विवाह समझते हैं? योग्य उम्र के विवाहों के खिलाफ होने वाले किन विवाहों को सत्याग्रह द्वारा रोकना चाहिए; इस बात का भी स्पष्ट खुलासा कर दीजियेगा।

हाल ही में दो बूढ़े महाशयों ने क्रमशः ५५ और ६० वर्ष की अवस्था में तेरह हजार और बाईस हजार देकर १०–१२ वर्ष की कन्याओं से विवाह किया है। इसी तरह के और भी दो विवाह एक ही गाँव में होने वाले हैं, इसके विरोध में हमने पत्रिकाओं द्वारा आन्दोलन शुरू किया, किन्तु अब पत्रिकाओं के आन्दोलन की अपेक्षा प्रत्यक्ष आन्दोलन की विशेष आवश्यकता है। कृपया इस बारे पत्र के उत्तर में (हिन्दी-नवजीवन में) अवश्य लिखें।

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे विवाहों के विरोध में सत्याग्रह आवश्यक है। परन्तु सत्याग्रह कैसे हो सकता है? सत्याग्रह की मर्यादा के बारे में मैंने बहुत कुछ लिखा है। तथापि इस समय कुछ लिखना आवश्यक है। सत्याग्रही संयमी होने चाहिए। समाज में

धनिक भी उसका विरोध नहीं कर सकते हैं। लोक-मत सत्याग्रह का शक्ति-सम्पन्न शस्त्र है। लोकमत के रहते हुए भी कोई मनुष्य उसका आदर नहीं करता है, तब समझा जाय कि उसके बहिष्कार का समय आ पहुँचा है। बहिष्कार करने की दशा में भी ऐसे सुधार विरोधी मनुष्य का कोई अनिष्ट कभी न किया जाय। बहिष्कार का दूसरा अर्थ यहाँ असहयोग है। जो मनुष्य समाज का विरोध करता है, उसको समाज की सेवा का अधिकार नहीं है। इससे आगे बढ़ने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रत्येक वस्तु के लिए हमेशा कुछ-न-कुछ विशेष कार्य हो सकता है। विवेक-शील और बुद्धिशाली सत्याग्रही ऐसे कार्य का पता पा ही लेता है।

कामी-पुरुषों के काम की तृप्ति का प्रश्न विकट है। काम का न ध्यान होता है, न विवेक। कामी-पुरुष अपनी काम की तृप्ति किसी-न-किसी तरह कर लेता है। इसका उपाय यह है कि २० वर्ष के पहले और उसकी संपूर्ण सम्मति के अभाव में कन्या का विवाह कभी न किया जाय तथा कोई भी कन्या वृद्ध के साथ विवाह न करे, ऐसी हालत में वृद्ध कामी क्या करे? समाज के पास इसका कोई उत्तर नहीं रहता है। समाज का कर्त्तव्य निर्दोष बाला को बचाने का है, कामी के काम की तृप्ति करने का कदापि नहीं। वस्तुतः जब समाज में शुद्ध-पवित्रता की मात्रा बढ़ जाती है, तब कामी का काम भी शान्त हो जाता है।

पर्दे की कुप्रथा

कोई बात प्राचीन है, इसलिए वह अच्छी है—ऐसा मानने से बहुत ग़लतियाँ होती हैं। यदि प्राचीन बातें सब अच्छी ही होतीं तो पाप भी कम प्राचीन नहीं है, परन्तु कितना ही प्राचीन होते हुए भी पाप त्याज्य ही रहेगा। अस्पृश्यता प्राचीन है, परन्तु पाप है इसलिए वह सर्वथा त्याज्य है। शराबखोरी, जुआ इत्यादि प्राचीन हैं परन्तु पाप हैं इसलिए वे त्याज्य हैं। जिसकी योग्यता हम बुद्धि से सिद्ध कर सकते हैं और जो बुद्धि-ग्राह्य हैं, उसे यदि बुद्धि क़बूल न करे तो वह शीघ्र छोड़ने योग्य है। पर्दा कितना ही प्राचीन हो, आज बुद्धि उसको क़बूल नहीं कर सकती है। पर्दे से होने वाली हानि स्वयं सिद्ध है। बहुत-सी बातों का अर्थ किया जाता है, पर्दे का कोई आदर्श अर्थ करके उसका समर्थन नहीं करना चाहिए। जिस हालत में आज हम पर्दे को पाते हैं, उसका समर्थन करना असम्भव है।

सची बात तो यह है कि पर्दा बाह्य वस्तु नहीं है, आन्तरिक है। बाह्य-पर्दा करने वाली कितनी ही स्त्रियाँ निर्लज्जा पाई जाती हैं। जो बाह्य-पर्दा नहीं करती, परन्तु आन्तरिक लज्जा जिसमें कभी

नहीं छोड़ी है वह स्त्री पूजनीया है, और ऐसी स्त्रियाँ आज भी जगत में मौजूद हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी भी बातें हम पाते हैं, जिनका पहले वाह्य अर्थ किया जाता था। और अब आन्तरिक अर्थ किया जाता है। ऐसा एक शब्द यज्ञ है। पशुहिंसा सचा यज्ञ नहीं परन्तु पाशवी-वृत्तियों को जलाना शुद्ध यज्ञ है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं, इसलिए जो लोग हिन्दू जाति का सुधार और रक्षा करना चाहते हैं, उनको प्राचीन दृष्टान्तों से डरने की आवश्यकता नहीं है। नये सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्तों से बढ़कर नहीं मिलते, परन्तु उन सिद्धान्तों पर अमल करने में नित्य परिवर्तन उन्नति का एक लक्षण है, स्थिरता मृत्यु अवनति का आरम्भ काल है। जगत् नित्य गतिमान स्थिरता मृत्यु का लक्षण है। यहाँ योगी की स्थिरता की बात नहीं, योगी की स्थिरता में तीव्रतम गति है। उस स्थिरता आत्म-जागृति है किन्तु यहाँ जड़ स्थिरता की बात है, इसका दूसरा नाम जड़ता कहा जा सकता है। जड़ता के वश होकर हम सब प्राचीन कुप्रथाओं का समर्थन करने को उत्सुक हो जाते हैं। यह हमारी उन्नति को रोकती है। यही जड़ता हमारे स्वराज्य की प्राप्ति में रुकावट डालती है।

अब पर्दे से होने वाली हानियों को देखें—

१—स्त्रियों की शिक्षा में पर्दा बाधा डालता है।

२—स्त्रियों की भीरुता को बढ़ाता है।

३—स्त्रियों के स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।

पर्दे की कुप्रथा

कोई बात प्राचीन है, इसलिए वह अच्छी है-ऐसा मानने से बहुत हानियाँ होती हैं। यदि प्राचीन बातें सब अच्छी हो होतीं तो पाप भी कम प्राचीन नहीं है, परन्तु कितना ही प्राचीन होते हुए भी पाप त्याज्य ही रहेगा। अस्पृश्यता प्राचीन है, परन्तु पाप है इसलिए वह सर्वथा त्याज्य है। शराब-खोरी, जुआ इत्यादि प्राचीन हैं परन्तु पाप हैं इसलिए ये त्याज्य हैं। जिसकी योग्यता हम बुद्धि से सिद्ध कर सकते हैं और जो बुद्धि-ग्राह्य हैं, उसे यदि बुद्धि क़बूल न करे तो वह शीघ्र छोड़ने योग्य है। पर्दा कितना ही प्राचीन हो, आज बुद्धि उसको क़बूल नहीं कर सकती है। पर्दे से होने वाली हानि स्वयं सिद्ध है। बहुत-सी बातों का अर्थ किया जाता है, पर्दे का कोई आदर्श अर्थ करके उसका समर्थन नहीं करना चाहिए। जिस हालत में आज हम पर्दे को पाते हैं, उसका समर्थन करना असम्भव है।

सच्ची बात तो यह है कि पर्दा बाह्य वस्तु नहीं है, आन्तरिक है। बाह्य-पर्दा करने वाली कितनी ही स्त्रियाँ निर्लज्जा पाई जाती है। जो बाह्य-पर्दा नहीं करती, परन्तु आन्तरिक लज्जा जिसने कभी

नहीं छोड़ी है वह स्त्री पूजनीया है, और ऐसी स्त्रियाँ आज भी जगत में मौजूद हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी भी बातें हम पाते हैं, जिनका पहले बाह्य अर्थ किया जाता था। और अब आन्तरिक अर्थ किया जाता है। ऐसा एक शब्द यज्ञ है। पशुहिंसा सचा यज्ञ नहीं परन्तु पाशवी-वृत्तियों को जलाना शुद्ध यज्ञ है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं, इसलिए जो लोग हिन्दू जाति का सुधार और रक्षा करना चाहते हैं, उनको प्राचीन दृष्टान्तों से डरने की आवश्यकता नहीं है। नये सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्तों से बढ़कर नहीं मिलते, परन्तु उन सिद्धान्तों पर अमल करने में नित्य परिवर्तन उन्नति का एक लक्षण है, स्थिरता मृत्यु अवनति का आरम्भ काल है। जगत् नित्य गतिमान स्थिरता मृत्यु का लक्षण है। यहाँ योगी की स्थिरता की बात नहीं, योगी की स्थिरता में तीव्रतम गति है। उस स्थिरता आत्म-जाग्रति है किन्तु यहाँ जड़ स्थिरता की बात है, इसका दूसरा नाम जड़ता कहा जा सकता है। जड़ता के वश होकर हम सब प्राचीन कुप्रथाओं का समर्थन करने को उत्सुक हो जाते हैं। यह हमारी उन्नति को रोकती है। यही जड़ता हमारे स्वराज्य की प्राप्ति में रुकावट डालती है।

अब पर्दे से होने वाली हानियों को देखें—

१—स्त्रियों की शिक्षा में पर्दा बाधा डालता है।

२—स्त्रियों की भीरुता को बढ़ाता है।

३—स्त्रियों के स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।

४—स्त्रियों और पुरुषों के बीच में स्वच्छ (शुद्ध) सम्बन्ध को रोकता है।

५—स्त्रियों की नीच-वृत्ति का पोषक बनता है।

६—पर्दा स्त्रियों को बाह्य जगत से दूर रखता है इसलिये वे उसके योग्य अनुभव से वञ्चित रहती हैं।

७—अर्धाङ्गिनी के सहचरी-धर्म में पर्दा बाधा डालता है।

८—पर्दा-नशीन स्त्रियाँ स्वराज्य प्राप्ति के कामों में अपना पूरा हिस्सा हरगिज़ नहीं ले सकती हैं।

९—पर्दे से बाल-शिक्षा में रुकावट होती है।

इन सब हानियों को देखते हुये विचार शील सब हिन्दुओं का यह धर्म है कि वे पर्दे को तोड़ दें। पर्दा तोड़ने और दूसरे सुधारों का सबसे सरल इलाज इन सुधारों को स्वयं आरम्भ कर देना है। हमारे कार्यों का अच्छा परिणाम देख कर दूसरे अपने आप उसका अनुकरण करेंगे। एक बात का ख़याल अत्यन्त आवश्यक है कि सुधारक कभी विनय और मर्यादा का त्याग नहीं करेगा। पर्दा तोड़ने में संयम की आवश्यक है और इसीलिये उसका तोड़ना कर्त्तव्य है और वह टूट सकता है। पर्दा तोड़ने में स्वच्छन्दता भी हेतु हो सकती है, ऐसी अवस्था में पर्दा टूट नहीं सकता, क्योंकि तब जनता में क्रोध पैदा होगा और क्रोध के वश होकर जनता बुद्धि का त्याग करके कुप्रथा का भी समर्थन करने लगेगी। जनता का हृदय पवित्र है, इस कारण अपवित्र हेतु का जनता कभी आदर नहीं करेगी।

एक दुखमद कहानी

रामगढ़ (जयपुर) से एक सज्जन लिखते हैं—

"यहाँ के अग्रवाल समाज में एक ऐसी मृत्यु हो गई है, जिससे सारे शहर में सन-सनी फैली हुई है; यानी एक ऐसे युवक का देहान्त हो गया, जिसका विवाह हुए केवल दो महीने हुये थे। बालिका न अभी अपने ससुराल गई थी और न उसे अभी इतना ज्ञान ही है कि वह कुछ समझ सके वह बिलकुल निर्बोध है और केवल १२ वर्ष की है। वह यह जानती ही नहीं कि विवाह क्या है। इस तरह की बालिका को समाज ने विधवा करके बैठा दिया है। लोग कहते हैं; उसके भाग्य में यही लिखा था। यह उसके पूर्व-जन्म के पापों का फल है, उसे कौन रोके न लड़की का पिता जीवित है न लड़के का ही; इस तरह लड़की एक दृष्टि से अनाथ है। लड़की की बूढ़ी माता और दादी जीवित हैं। समाज के भय से भला उसकी माता विवाह का तो विचार ही कैसे कर सकती है! इस तरह दोनों ओर भीषण शोक छाया हुआ है, मगर उन्हें धैर्य दिलाने का कोई मार्ग नहीं सूझता।

मारवाड़ी समाज में इस तरह की और भी कई बालिकायें

एक दुखमद कहानी

गमगढ़ (जयपुर) से एक सज्जन लिखते हैं—

"यहाँ के अग्रवाल समाज में एक ऐसी मृत्यु हो गई है, जिससे सारे शहर में सन-सनी फैली हुई है; यानी एक ऐसे युवक का देहान्त हो गया, जिसका विवाह हुए केवल दो महीने हुये थे। बालिका न अभी अपने ससुराल गई थी और न उसे अभी इतना ज्ञान ही है कि वह कुछ समझ सके वह बिलकुल निर्बोध है और केवल १२ वर्ष की है। वह यह जानती ही नहीं कि विवाह क्या है। इस तरह की बालिका को समाज ने विधवा करके बैठा दिया है। लोग कहते हैं; उसके भाग्य में यही लिखा था। यह उसके पूर्व-जन्म के पापों का फल है, उसे कौन रोके न लड़की का पिता जीवित है न लड़के का ही; इस तरह लड़की एक दृष्टि से अनाथ है। लड़की की बूढ़ी माता और दादी जीवित हैं। समाज के भय से भला उसकी माता विवाह का तो विचार ही कैसे कर सकती है? इस तरह दोनों ओर भीषण शोक छाया हुआ है, मगर उन्हें धैर्य दिलाने का कोई मार्ग

मिलेंगी। वे भी इसकी तरह समाज को श्राप दे रही हैं, और यदि निकट भविष्य में समाज न चेता तो उसका सर्वनाश अवश्य होगा। आप मारवाड़ी समाज को इसके लिये चेतावनी दें तो बहुत कुछ असर हो सकता है। अवश्य ही बहुत-से नवयुवकों में आपके वाक्य नवजीवन का संचार करते हैं। अतः आप इसके लिये 'हिंदी-नवजीवन' में कुछ अवश्य ही लिखें।"

ऐसी करुणास्पद कथाएँ भारतवर्ष में बहुत सुन पड़ती हैं। और विशेषता यह है कि ऐसी घटनाएँ धनिक जातियों में ही अधिक होती हैं; क्योंकि धनिकों में वृद्ध लोगों को भी शादी करने की इच्छा होती है और जो लड़की विधवा हो जाती है उसे विधवा बनाये रखने में ही वे लोग बड़प्पन मानते हैं। धर्म की तो यहाँ बात ही नहीं है। इसी कारण ऐसी घटनाएँ मारवाड़ी, भटिया, इत्यादि वर्गों में अधिक होती रहती हैं। इस व्याधि की एक ही औषधि है; प्रत्येक जाति में बुराइयों के खिलाफ विनयपूर्ण आन्दोलन शुरू किये जायँ और उनके द्वारा सारी जाति में जागृति फैलाई जाय। जब समाज जागृत हो जायगा, तब दैव को अथवा उन्हें निमित्त बना कर कोई बाल-वैधव्य का समर्थन नहीं करेगा। जब एक नवयुवक विधुर हो जाता है, तब उसे पूर्व जन्म के दोष के बहाने विवाह करने से कोई नहीं रोकता। इसलिए सुधारकों को मेरी सलाह है कि वे निराशा न होवें बल्कि अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहें और आत्म-विश्वास ही याद रखनी चाहिये कि अकले व्याख्यानों द्वारा यह काम नहीं हो सकता, सत्याग्रह तक पहुँचने

की आवश्यकता होगी। सत्याग्रह की मर्यादा पिछले अंकों में बताई गई है। सत्याग्रह-रूपी सूर्य के सामने पाप-वैधव्य-रूपी यह अंधेरा कभी ठहर नहीं सकेगा, क्योंकि सत्याग्रही के शब्द-कोष में निष्फलता शब्द ही नहीं है।

पहला प्रश्न मौजूँ और बड़े मौक़े का है। इन प्रश्नों की मूल
... है। मैंने उसका स्वतन्त्र अनुवाद ही दिया है।
किसी पुरुष या स्त्री को राम नाम के उच्चारण मात्र
... में भाग लिए बिना ही आत्म-दर्शन प्राप्त हो सकता
प्रश्न इसलिए पूछा है, कि मेरी कुछ बहिनें यह कहा
हमको गृहस्थी के काम-काज करने तथा यदा-कदा
के प्रति दया भाव दिखाने के अतिरिक्त और किसी
नहीं है

इस प्रश्न ने केवल स्त्रियों को ही नहीं, बल्कि बहुतेरे पुरुषों को भी उलझन में डाल रक्खा है और मुझे भी इसने धर्म-सङ्कट में डाला है। मुझे यह बात मालूम है कि कुछ लोग इस सिद्धान्त के मानने वाले हैं कि काम करने की कतई जरूरत नहीं है और परिश्रम मात्र व्यर्थ है। मैं इस ख्याल को बहुत अच्छा तो नहीं कह सकता, अलबत्ता अगर मुझे उसे स्वीकार करना ही हो, तो मैं उसके अपने ही अर्थ लगाकर स्वीकार कर सकता हूँ। मेरी नम्र सम्मति यह है कि मनुष्य के विकास के लिये परिश्रम करना अनिवार्य है। वह जरूरी है बिना इस बात के ख्याल के कि उसका फल क्या मिलेगा? राम नाम या कोई ऐसा ही पवित्र नाम जरूरी है—महज लेने के लिये ही नहीं, बल्कि आत्म-शुद्धि के लिये, प्रयत्नों को सहारा पहुँचाने के लिए और ईश्वर के सीधे-सीधे दर्शन पाने के लिए। इसलिए राम नाम उच्चारण कभी परिश्रम के बदले काम नहीं दे सकता, वह तो परिश्रम को अधिक बलयुक्त बनाने और उसे उचित मार्ग पर ले चलने के लिए है। यदि परिश्रम-मात्र व्यर्थ ही है, तब फिर घर-गृहस्थी की चिन्ता क्यों? और दीन दुःखियों की यदा-कदा सहायता किसलिये? इस प्रयत्न में भी सेवा का सभी अंकुर मौजूद है। और मेरे लेखे गऊ सेवा मानव-जाति की सेवा है। यहाँ तक कि कुटुम्ब की निर्लिप्त भाव से की गई सेवा को भी मैं मानव जाति की सेवा मानता हूँ।

पति की बात तो यह है कि वह अपने को निरंकुश समझता है। वह अपने को इस बन्धन से मुक्त मानता है कि उसे अपनी जीवन-सहचरी की सलाह लेनी चाहिये। वह अपनी भार्या को अपनी मिलकियत मानता है, और बेचारी पत्नी जो कि पति को 'सर्वस्व' होने पर विश्वास करती है, प्राय: उस दुख को सहन कर लेती है। मैं समझता हूँ कि इस स्थिति से उबरने का रास्ता है। मीराबाई ने रास्ता दिखा दिया है। जब पत्नी अपने को गलती पर न समझे और जब कि उसका उद्देश्य अधिक पवित्र हो, तब उसे पूरा अधिकार है कि वह अपने मन का रास्ता अख्तियार कर ले, और नम्रता और धैर्य के साथ परिणाम का सामना करे।

तीसरा प्रश्न यह है—यदि किसी स्त्री का पति मांसाहारी हो, और वह स्त्री मांस-भक्षण को बुरा समझती हो, तो क्या वह अपने मन में जमा की हुई बात कर सकती है? और क्या प्रेममय उपायों से अपने पति का मांसाहार या उसी तरह की कोई बुरी आदत छुड़ाने का प्रयत्न करे? या उस पत्नी का फ़र्ज़ यह है कि अपने पति के लिये मांस पकाने और जो कि उससे भी बुरी बात है क्या वह उसे पति के कहने पर स्वयं खाने के लिये बाध्य है? अगर आप कहें कि पत्नी अपने मन के अनुसार काम करे तो संयुक्त गृहस्थी इस सूरत में क्यों कर चल सकती है जबकि घर से एक तो मज़बूर [illegible]

किसी बात को बुरा समझती है, तब उसमें सही रास्ते पर चलने की हिम्मत होनी ही चाहिये। लेकिन यह विचारते, हुए कि गृहिणी का काम तो घर का काम-काज सम्हालना और इसलिये खाना पकाना भी है—ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार पति का कर्तव्य कुटुम्ब के लिये धन कमाना है, उस पर माँस पकाना उस हालत में लाजिमी है, जब कि पहले दोनों गोश्त खाते हैं। और अगर किसी शाकाहारी कुटुम्ब में पति माँसाहारी बन जाय और अपनी पत्नी को गोश्त पकाने के लिये मजबूर करने की कोशिश करे, तो पत्नी पर यह बाध्य नहीं है, कि वह ऐसी चीज पकावे जो उसके कर्तव्य भाव के प्रतिकूल हो।

घर में शान्ति अभीष्ट वस्तु है, लेकिन यह स्वयं ध्येय नहीं हो सकती है। मेरे लिये तो विवाहित अवस्था भी संयम की ठीक वैसी ही सूरत है, जैसा कि अन्य कोई जीवन-कर्तव्य है। विवाहित जीवन का अभिप्राय यह है कि पारस्परिक लाभ इस संसार में भी हो और बाद के लिये भी। वह मानवजाति की सेवा के लिये भी है। जब एक फरीक़ आत्मसंयम के नियमों का उल्लंघन करता है, तब दूसरे का हक़ हो जाता है कि वह उस बंधन को तोड़ दे। यहाँ नैतिक उल्लंघन से तात्पर्य है, न कि शारीरिक से। इसमें तलाक़ शामिल नहीं है।

पत्नी या पति भले ही अलग हो—लेकिन उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जिसके निमित्त वे विवाहित हुये थे। हिन्दू-धर्म पति-पत्नी में-से प्रत्येक का एक दूसरे के बिलकुल समान मानता है। इसमें